किसान-राज

(पञ्चवर्षीय योजना)

प्रणेता—

प्रान्तपति

श्री पं० श्रीकृष्णदत्त

एम. ए., एम. एल. ए. (`.

किसान-राज

(पञ्चवर्षीय योजना)

प्रणेता—

प्रान्तपति

श्री पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

एम. ए., एम. एल. ए. (केन्द्रीय)

उन्हे यह ज्ञात हो जाय कि देश का कल्याण उन्हीं के किए हो सकता है। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता इस पुस्तक को पढ़ कर अपने आपको अधिक बलशाली अनुभव करेगा और उसे काम करने के लिए नई स्फूर्ति और नव उत्साह प्राप्त होगा। पालीवाल जी की लेखन शैली अपनी अनूठी है, जिसके कारण राजनीति की जटिल समस्याओं को साधारण से साधारण खेतिहर भी बड़ी आसानी से समझ सकता है। ऐसी सुन्दर, सामयिक और ज्ञानपूर्ण पुस्तक का जोरों से स्वागत होगा—यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

—महेन्द्र

विषय सूची

१- किसान-गुण-गाथा... ... ... १

२- कष्ट-कथा ३१

३- सङ्कट-मोचन-योजना... ... ... ६४

४- मुह दर मुंह १७६

किसान-गुण-गाथा

विश्व के विकास का इतिहास साक्षी है—किनर किसान होकर ही नर बन सका। और अध्यात्मवाद के कथनानुसार किसान-पथ से ही वह नर से नारायण हो सकेगा।

धन्धे की दृष्टि से किसानी सर्वश्रेष्ठ धन्धा है। कहावत है, उत्तम खेती, मध्यम बंज। अधम चाकरी, भीख निदान। परन्तु किसानी केवल जीविका निर्वाह का एक साधन मात्र नहीं, वह प्रगति का पवित्र और परिपूर्ण, सुप्रमाणित पथ है। यह ध्रुव सत्य, मार्क्सवादी रूसी कृषि के इतिहास-कार पैवलोवस्की को इन शब्दो मे स्वीकार करना पड़ा है—'किसानो की खेती केवल जीविका का साधन नहीं, वह जीवन का मार्ग है। शताब्दियों से मनुष्यों की बहुत भारी संख्या के लिये वह जीविका निर्वाह का साधन और जीवन-पथ-प्रदीप, दोनो रही है।''

चिरसृजनात्मक किसानो ने ही मानव समाज और मानवी सभ्यता तथा संस्कृति की सृष्टि की। वे ही उसके आदि और अटूट स्रोत है। और वे ही सामाजिक स्वावलम्बन के सुदृढ़-स्तम्भ। यूरोप के अर्वाचीन दार्शनिक—मुकट-मणि प्रो॰ ह्वाइटहैड का कहना है कि प्रगति की गति को सफलता पूर्वक वेग देने में कृषि को अत्युच्च स्थान देना पड़ेगा।

मानव समाज और मानव सभ्यता के आदिम-काल में यूरुप में मानवों को दो श्रेणियों मे बाँटा गया था। एक वह जो घर द्वार हीन, कंजड़ो की तरह, शिकार वगैरह अथवा रोज की मिहनत मजदूरी से अपना जीवन-निर्वाह करते थे, जिनकी कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं होती। ये नोमैड कहलाते थे। दूसरा—जो खेती या पशु-पालन द्वारा जीविकोपार्जन करते तथा ग्रामों में रहते थे। ये सैटिल्ड या सिविलाइज्ड (सभ्य) कहलाते थे। हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने भी यूरुप वासियों से कहीं पहले यही विभाजन किया था। वे पहले वर्ग के लोगों को व्रात्य कहते थे और दूसरे वर्ग के किसान वर्ग के लोगों को शालीन। "शालिभिः कृष्युत्पादितैः जीवंति, शालासु वसंति, सदाचारैः शालेते, इति शालीनाः।" यानी किसान होने के लिए खेती से पैदा हुये शालि धान्यादि से जीवन निर्वाह करना तथा ग्राम, नगरादि में शालाओं में रहना ही काफी नहीं था, सदाचार और शिष्टाचार भी अनिवार्यतः आवश्यक था। अर्थात् किसानो के साथ सभ्यता और सदाचार का सनातन सम्बन्ध माना गया था। कंजड़ो और शिकारियों का सा जीवन व्यतीत करने वाले वर्ग मे से 'व्रात्य' वही कहलाते थे जो व्रात्यस्तोम द्वारा शालीन बनाये जा सकते हों, किसान पथ के पथिक हो सकते हो। किसानों ने मानव-समाज, मानव सभ्यता और मानव-संस्कृति का केवल शिलान्यास ही नहीं किया उसका सुन्दर सुविशाल भवन भी उन्होंने ही निर्मित किया।

आर्थिक श्रम-विभाजन और सामाजिक सुव्यवस्था पर तथा अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र और मनोविज्ञान के सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तो पर आधारित वर्ण-व्यवस्था किसानों में ही सफलता के निकट पहुँच सकी है। किसानो मे चारो वर्ण एक साथ निवास करते है। टाल्सटाय प्रभृति अनेक विद्वान-विचारकों का मत है कि धर्म-भाव और ब्रह्म-ज्ञान किसानो में जितना अधिक मिल सकता है उतना और कहीं नहीं। जर्मन विद्वान Heidgger आदि अनेक अध्यात्मवादियों ने मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार किया है कि धर्म और अध्यात्म की शिक्षा जितनी किसानो और खुले खेतो से मिलती है उतनी दर्शनो और दार्शनिको से नहीं मिल सकती। ब्राह्मणो के स्वभावज कर्म, शम, दम, तप, क्षान्ति, आर्जव और ज्ञान-विज्ञान मे आस्तिकता किसानों मे जन्मना ब्राह्मणों से कहीं अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। जहाँ तक क्षात्र-धर्म से सम्बन्ध है वहाँ तक यह प्रसिद्ध ही है कि वर्दी पहन कर किसान ही सैनिक बन जाता है। ससार के सर्वश्रेष्ठ और सब से अधिक क्षत्री, सैनिक, किसानों में से ही पाये जाते है। और 'कृषि-गौरक्षा-वाणिज्य' को तो किसानी कहते ही है। अब रहा, सेवा-धर्म सो वह भी किसानो मे किसी से कम नहीं है।

किसानो का मन और उनकी आत्मा की उड़ान ब्रह्मलोक तक ऊँची से ऊँची 'यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते' तक है, परन्तु उनके पैर सदैव पृथिवी मे गड़े रहते है। वे सादा जीवन और उच्च-विचार के अन्यतम उदाहरण है। कारण, किसान और धरती माता का अविच्छेद सम्बन्ध है। किसान धरती पर पैदा

है, उसी पर फलते-फूलते है और उसी मे मिल जाते हैं। शहरी लोगों की तरह किसान भूमि से उन्मूलित नहीं होते। उनकी जड़ें भूमि मे गहरी घुसी रहती है। यही कारण है कि जहाँ शहरी लोगो मे पशु-जीवन के चिन्ह अधिक पाये जाते हैं वहाँ किसानों का जीवन वानस्पतिक अधिक होता है। जहाँ शहर मे जाते ही किसान का दम घुटने लगता है वहाँ शहरी आदमी शहर की सड़क की पटरी पर मर जायगा लेकिन गाँव नहीं जायगा। किसान विराट-शरीर का अङ्ग ब्रह्माण्ड का एक पिण्ड होता है, शहरी उनका विजातीय द्रव्य। किसान विराट-सङ्गीत का एक स्वर है, वह विराट की ताल पर नाचता है। शहरी छन्दो भङ्ग है। किसानो का जीवन सादा, शान्त समन्वयी और आध्यात्मिक है, शहरियों का जटिल, चमक-दमक का तथा ऐन्द्रिक और द्वन्द-संघर्ष का।

निस्संदेह, भूमि से किसान का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। वह भूमि से बँधा हुआ, भूमि का दास है। प्रकृति पर निर्भर रहने के कारण ही वह देवताओ पर विश्वास करता है। वह भूमि की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता परन्तु साथ ही निश्चित है कि इसी कारण वह भूमि का स्वामी भी है। पृथिवी पुत्र किसान ही पृथिवी का स्वामी है। किसान अपने शरीर के कण-कण से विश्वास करते है कि धरती उसी की है जो उसकी सेवा करे। अपने इस विश्वास को वे सनातन परम्परा और स्वयं-सिद्ध ईश्वरीय नियम मानते हैं। हाँ, रूसी किसान भी यही

मानते है। ग्रोरीसन का कहना है कि रूस के किसानों ने अपने इष्टदेव सन्त-निकोलस से पूछा—'प्यारे निकोलस, भूमि, खेत और ग्राम, किसके होने चाहिये।' देवता ने उत्तर दिया—'मेरे भाइयो और बेटो, तुम्हारे और केवल तुम्हारे।'

पृथिवी-पुत्र होने के कारण किसान तथ्यो को ही नहीं सत्य को भी देखता है। इसीलिये उसमे वह दिव्य-दृष्टि–समझ–होती है जिससे वह वास्तविकता के सब से अधिक निकट होता है। नियति, रक्त और सृजन-शक्ति से लदे हुए किसान का जीवन पर शाश्वत प्रभुत्व है किसान जन People folk है, उन्मूलित ढेर mass नहीं। इसीलिए जहाॅ शहरी भूमि की, देश की, उन सब परम्पराओ का शत्रु होता है जो उसकी संस्कृति के प्रतिनिधि होते है वहाॅ किसान उनका संरक्षक होता है। मानव के सनातन प्रश्नो के सम्बन्ध मे किसानो का दृष्टिकोण वास्तविक होता है। वह उन प्रश्नो से भागता नहीं, उनके अस्तित्व को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है और फिर जीवन में उन आदर्शों पर देशकालावस्था के अनुसार चलने का प्रयत्न करता है। योनि, समाज आदि महान और जटिल समस्याओ का हल किसान उसी वास्तविकता से करता है जिससे वह जीवनपर शासन करता है। उसका-यह हल उसके सजग सहज ज्ञान पर आधारित होता है।

सर्व भक्षी शहर जहाॅ गाॅवो को खाकर बढ़ता है वहाॅ किसान सब को भोजन देकर भोजन करता है। किसान है अमृनाशी यज्ञ शेप पर निर्वाह करने वाला। शहरी आ

सब को हजम करने वाला पाप-भोजी पापी है। जहाँ शहर पनपता है, वहाँ आस पास का समस्त जीवन सूख जाता है। अर्थात शहर शोषक है किसान पोषक। किसान के पनपने पर सब पनपते हैं, शहर के पनपने पर शेष सब बिनराते हैं। शहरी आत्मा इतिहास की भौतिक धारणा है। वास्तव में शहर भौतिकवादी होते हैं, उनमें आत्मा होती ही नहीं। वे भौतिक जगत की कार्य-कारण परम्परा से परे नहीं उठ सकते। उनकी हुरजा, बेकारी, बीमारी, वृद्धावस्थादि सम्बन्धी बीमा योजनाएँ इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि उनमें ईश्वर के प्रति विश्वास सर्वथा लुप्त हो जाता है और उसके साथ साथ आत्म विस्मृति तथा आत्म समर्पण का भाव और निशङ्क युक्तोचित साहस ही तिरोहित हो जाता है।

किसानों ने ग्राम पंचायतों के रूप में जिस आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की प्रागैतिहास काल में ही सृष्टि कर दी उसकी जोड़ की व्यवस्था सभ्यताभिमानी शहरी अब तक नहीं सोच सके। यह व्यवस्था समाज, सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठतम संस्थाएँ तथा साधन हैं। इस व्यवस्था का आर्थिक आधार, घरेलू उद्योग धन्धे हैं और सामाजिक राजनैतिक दृष्टि से स्वयंपर्याप्त तथा स्वयंशासित ग्रामों की व्यवस्था मानवता, भ्रातृभाव, समता, न्याय, शान्ति, सहयोग और स्वाधीनता की नींव है।

किसानों ने केवल समाज, सभ्यता और संस्कृति की सृष्टि ही नहीं की उसका भरण-पोषण और उसकी रक्षा भी की।

अर्वाचीन भारतवर्ष का इतिहास इस बात का विशेष रूप से साक्षी है। यो तो संसार भर मे सर्वत्र शहरी सभ्यता विनाशकारी और विध्वंसात्मक है तथा ग्रामीण सभ्यता कल्याणकारी और सर्वहित सम्पादक। किसान किसी भी वर्ग की डिक्टेटरशिप नही चाहता। वह लोकतन्त्रीय शासन, स्वशासन, स्वभाग्य-निर्णय, प्रत्येक ग्राम का स्वराज्य, पञ्चायती राज, जनता का राज चाहता है। परन्तु भारतवर्ष को दो सौ बरस से साम्राज्य-वाद की सुदृढ़ लौह-शृंखलाओ मे जकड़ कर भी सत्यानाशी पाश्चात्य-सभ्यता भारतीय समाज के ऊपर के प्रस्तर तक ही अंशतः प्रवेश कर पाई। इसका एक मात्र कारण ग्रामीण सभ्यता, किसानो की धर्म-रक्षिणी शक्ति ही है। आज भी भारत की देह कितनी ही जकड़ी हुई क्यो न हो, उसका स्वस्थ और सबल हृदय गॉवो मे सुरक्षित है।

संसार मे समता, सहभ्रातृता और स्वाधीनता की, लोकतंत्र, स्थायी शान्ति और सच्ची स्वतंत्रता की स्थापना किसानो के बल पर, ग्राम्य-स्वराज्य की व्यवस्था द्वारा ही हो सकेगी। संसार भर की, मानव-मात्र की चौमुखी स्वाधीनता की कुञ्जी त्रिराष्ट्रो रूस, इङ्गलैड और अमेरिका और उसके वर्तमान नायको स्टालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट के पास नही किसानों के पास है। नवीन विश्व-व्यवस्था विश्व भर मे सब से स्थायी शान्ति लोकतंत्र और स्वाधीनता की व्यवस्था, ग्राम-स्वराज्य के आधार पर ही स्थापित हो सकती है। ग्रामीण घरेलू धन्धों मे आर्थिक लोकतन्त्र उसी प्रकार विराजमान रहता है जिस

तरह भक्तों के हृदय में भगवान। ग्राम-स्वराज्य, पञ्चायती राज में शक्ति और नौकरशाही के नियंत्रण तथा व्यवस्थापिका, कार्य कारिणी और न्याय कारिणी शक्तियों के सामञ्जस्य की समस्या भी सहज ही हल हो जाती है। स्वयं मार्क्स ने किसानों की लोकतन्त्रीय शक्ति को स्वीकार किया है। सच बात यह है कि यदि शक्ति का अर्थ संहार और कला का अर्थ विलास नहीं है तो संतप्त संसार को नवजीवन का निर्देश किसान-जीवन-पथ से ही मिलेगा।

किसान का रुख-मुख 'प्रभुता' की ओर नहीं, प्रभु की ओर है। वह राजनीति में विरक्त नहीं, आत्मानुभूति में अनुरक्त है। वह लोक में रह कर परलोक को सिद्ध करता है। वह जिस अव्यक्त की गति देहियों को दुःख से होती है, उसकी प्राप्ति अव्यक्तासक्त चेतसां वालों के अधिकतर क्लेश वाले मार्ग से न करके प्रत्यक्षावगम धर्म्य सुसुख राज-मार्ग से करता है। जिससे भूतों को प्रवृत्ति मिली है, तथा जिससे यह सब है उसकी अपने कर्मों से अर्चना करके वह सिद्धि प्राप्त करता है। वह जगत को सेवा द्वारा जगदीश की सेवा करता है। सर्वभूत हित-रति से ही आत्म-रति का अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। जनता ही उसका जनार्दन है।

प्रत्येक किसान जीवित बोधि सत्व है। वह उस समय तक अपनी मुक्ति कदापि नहीं चाहता जब तक अखिल विश्व का एक कण भी परमाणु बंधन में है। वह जनता जनार्दन की सेवा द्वारा

ही नर से नारायण होने के लिये प्रयत्नशील है। न तो वह कोरे ब्रह्मवादियों की तरह अति-प्रश्नो पर माथा पची ही करता है, और न भौतिकवादियो की तरह आत्मा-परमात्मा के प्रति अपनी श्रद्धा तथा अपना विश्वास ही खोता है। वह कर्मयोगी की तरह स्वभाव नियत कर्म करता रहता है। स्वधर्म का पालन करने मे वह कभी नहीं चूकता।

श्रद्धालु होता हुआ भी किसान बुद्धि की, तर्क की, विवेक की, स्वतन्त्र-चिन्तन की अवहेलना नहीं करता। हाँ, वह व्यवसायात्मिका बुद्धि को स्थिर और वासनात्मक बुद्धि को शुद्ध करने की अनिवार्य आवश्यकता को अवश्य कदापि नहीं भूलता। किसान चित्त-शुद्धि और सदाचार का हामी होता है क्योकि वह जानता है कि वासना की दासी बुद्धि के निर्णय कभी सही, शुद्ध और स्वतन्त्र नहीं हो सकते। शुद्ध बुद्धि मे ही वह मानव का त्राण और कल्याण देखता है।

आज समस्त संसार मे धर्म और विज्ञान के पार्थक्य और विरोध के कारण त्राहि-त्राहि मची हुई है। सभ्य कहलाने वाले देश सर्वनाश की सड़क पर सरपट दौड़े जा रहे है। संसार के सर्वमान्य विचारक इसी कारण धर्म और विज्ञान के समुच्चय की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव कर रहे है। जार्ज वर्नार्डशा का कहना है कि इतिहास की भावी गति-विधि इस पर निर्भर रहेगी कि धर्म और विज्ञान का परस्पर क्या सम्बन्ध रहे? धर्म और विज्ञान का यह वाँछनीय समुच्चय ग्राम्य-सभ्यता मे,

रूप से और सहज ही हो सकता है। यूरुप मे धार्मिक प्रभाव का जो ह्रास दिखाई दे रहा है उसका मुख्य कारण यही है कि वहाँ की सभ्यता शहरी सभ्यता है। जर्मनी और इङ्गलैण्ड मे जहाँ की अस्सी फीसदी से ऊपर आबादी शहरो मे रहती है, शान्ति, लोकतन्त्र और स्वाधीनता ढूँढ़ने पर भी नही दिखाई देती। अमेरिका जितना अधिक शहरी होता जा रहा है उतना ही अधिक अपने प्रारम्भिक स्वाधीनता प्रेम से सुदूर चला जा रहा है। रूस मे औद्योगीकरण के बाद भी जो कुछ गनीमत है वह किसानो के कारण। कौन नही जानता कि वहाँ पच्चीस वर्ष के धर्म विरोधी एक छत्र शासन के बाद भी धर्म भाव नही मिटा, वह केवल किसानो के कारण।

किसान विश्लेषणात्मक न होकर समन्वयात्मक है। उसे यह बताने के लिए किसी डार्विन की आवश्यकता नही कि मनुष्यो का तन ही नही मन भी भिन्न भिन्न होता है। करोड़ो मनुष्यो में भी किसी दो का चेहरा बिल्कुल एक-सा नही होता। वह स्वयं यह जानता है कि पाँचों उँगली एक-सी नही होती। परन्तु इस भेद-भाव को स्वीकार करते हुए भी वह भिन्नता मे छिपी हुई एकता को नही भूलता। वह जानता है कि 'सर्व सम्बद्ध सर्वत्र, सर्वथा, सर्वदा।' इसीलिए समस्त भेद-भावों को स्वीकार करके भी वह अपने को छोड़ कर सब के विनाश का कार्यक्रम नही बनाता बल्कि सर्वोदय के सिद्धान्त को, सर्वभूत हित-रति के आदर्श को तथा सहयोग और सदाचारिता के नियमों को अपनाता है। जङ्गलो मे वह परस्पर

एक दूसरे पर अवलम्बित Species जातियों के सङ्गठन की विजय को देखता है। वह डार्विन के जीवन-संघर्ष के अर्धसत्य सिद्धान्त पर न चल कर प्रिंस क्रोपाटकिन के अधिक सत्य पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त को अपना जीवन-सिद्धान्त बनाता है। वह यह जानता है कि संसार के इतिहास में विजय उनकी नहीं हुई जिन्होंने हिंसा या युद्धात्मक शक्तियों में विशेषता उपार्जित की। शक्ति के सत्वर प्रयोग मे कोई ऐसी बात है जो स्वयं उसके उद्देश्य को विफल कर देती है। इसका मुख्य दोष यह है कि उसमे स्वेच्छा प्रेरित सहयोग के लिये स्थान तथा अवसर नहीं रहता। किसान यह जानता है कि भौतिकवादी पाश्चात्य संसार मे भी, शेर मारे जाते है और गौएँ पाली जाती है।

किसान अपने सहज ज्ञान से ही यह जानता है कि जीवन-संघर्ष के सिद्धान्त को मानने वाले डार्विन ने ही अपनी The descent or origin of man (मनुष्य की उत्पत्ति) नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक के दोसौ तीनवें पृष्ठ पर यह कहा है कि सदाचार का उच्चादर्श व्यक्ति के लिए तात्कालिक भले ही लाभ प्रदान न करे परन्तु एक tribe जाति के लिए दूसरी ऐसी जाति के मुकाबिले में ब्रह्मास्त्र सिद्ध होता है जिसमे सदाचार की तुलनात्मक कमी हो। इसीलिए किसानों का जीवन-व्रत है कि वे प्रत्येक देवता को, विश्व और समाज की समस्त प्रगति-पोषक शक्तियों को उनका यज्ञ-भाग देते है। इसमे वे चोरी नहीं करते क्योंकि वे जानते है कि परस्परं भावयन्त. ही सबके सब श्रेय को प्राप्त होंगे। यज्ञ भावित देवता ही इष्ट-भोग प्रदान करेंगे।

गीता व वाल्मीकि रामायण मे वर्णित दैवी सम्पत् किसानों मे पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। किसानो की सम्पत महायंत्रादि प्रधान शहरो की आसुरी सम्पत् से सर्वथा भिन्न होती है। इसीलिए किसान साम्यवाद, वर्गवाद, समाजवाद को न अपना कर सर्वोदयवाद को आत्म-त्याग, सर्वभूतानुकम्पा, लोक-ज्ञान, पालन-पोषण के मार्ग को स्वीकार करता है।

किसान की स्वाधीनता भी स्वच्छन्द स्वेच्छाचारिता न होकर संयम नियम के छन्दो से वद्ध सच्ची स्वाधीनता होती है। किसानो की स्वाधीनता के माने है कि प्रत्येक type ढाँचे के भीतर सम्पूर्ण समाज के व्यापक हितो को व्याघात पहुंचाये विना ही सहयोग और सहचारिता का साम्राज्य रहे।

किसान यह जानता है कि प्रत्येक वस्तु thing का अपना स्वधर्म—स्वभाव नियत कर्म—होता है और स्वतन्त्रता के माने अपने स्वधर्म को पूर्ति करने की स्वतन्त्रता ही है। स्वतन्त्रता हमारे अपने स्वधर्म मे ही प्रवाहित होती है। जब हम स्वधर्म का पालन करते हैं तभी स्वतन्त्र होते हैं। स्वधर्म को पहचानने और उसका पालन करने वाला व्यक्ति ही वास्तविक व्यक्ति होता है और वास्तविक पुरुष ही स्वतन्त्र हो सकता है।

विकास और प्रगति की गति नर तक पहुंचकर ही नहीं रुक जाती। श्रेणी-हीन समाज की स्थापना के बाद प्रगति की गति कैसे होगी और किस दिशा में होगी इन प्रश्नो का उत्तर अध्यात्मिक प्रगतिवाद ही देता है। पुराण भौतिकवाद, वैज्ञानिक

भौतिकवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के पास इनका कोई उत्तर नहीं।

स्पष्ट है कि विकास और प्रगति की प्रक्रिया नर के नारायण होने पर ही पूरी हो सकती है। नर विकास और प्रगति की प्रक्रिया का मध्य-बिन्दु है, अन्त नहीं और नर से नारायण होने की प्रक्रिया की पूर्ति के लिए किसान-पथ ही राज-पथ है।

इतिहास का यह चक्र लौटाया नहीं जा सकता। प्रगति की गति रोकी नहीं जा सकती। आध्यात्मिक जीवन की ओर मनुष्य की उन्नति बन्द नहीं हो सकती।

इसीलिए किसान की शक्ति महान् है। इसीलिए प्रकृति पुत्र अमर किसान प्रकृति-माता ही की तरह अमर है। मानव-समाज का इतिहास पग-पग पर पुकार-पुकार कर कह रहा है कि जीवन समर मे सदैव किसानो का अभ्युदय हुआ है। उनकी प्राण-शक्ति अपरिमित है। अपनी विश्व इतिहास की रूप-रेखा (out line of history) में सातसौ दस वें सफे पर एच० जी० वैल्स ने लिखा है कि चौदहवीं सदी से जब से फ्रांस जर्मनी और इङ्गलैण्ड मे किसान-युद्ध हुए तब से किसानो के संघर्षों मे बहुत से उलट-फेर हुए। उनके अनेक विद्रोह हुए। वे कभी कुचल दिये गये। कभी उनसे समझौता किया गया तथा कभी उन्हे थोड़ी-बहुत सान्त्वना दे दी गई लेकिन तब से लेकर आज तक किसानो के संघर्ष पूर्णतया बन्द कभी नहीं हुए। बड़े-बड़े राजनैतिक झंझावात आये, साम्राज्य स्थापित हुए और

तिरोहित भी हो गये। इनमें किसानों और उनके बालबच्चों तक की कुर्की कर दी गई। फिर भी किसान जीवित रहे।

किसान केवल साधुओं का परित्राण ही नहीं करते वे दुष्टों का विनाश भी उतनी ही सफलता-पूर्वक करते हैं। वे मानव-समाज, सभ्यता और संस्कृति के सृजक और संरक्षक, जनक और पोषक ही नहीं, प्रगति-विरोधी शक्तियों के संहारक भी हैं। अर्थात् किसानों में विकास और प्रगति का कर्ता धर्ता संहर्ता ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों की शक्ति है। सदाशिव, और सदाशिव का उपासक किसान यह भली भाँति जानता है कि शिव में चेतनता का ज्ञान शक्ति के कारण होता है। शक्ति के बिना शिव शव (मृतक) है। वास्तव में शिव और शक्ति में पार्थक्य नहीं। शक्ति ही अन्तर्मुख होने पर शिव और शिव ही बहिर्मुख होने पर शक्ति रूप धारण करते हैं। शिव सदा शक्ति के साथ मिल कर रहते हैं।

किसानों को क्रान्ति-विरोधी, प्रतिक्रिया-वादी अथवा शक्ति तथा साधनहीन मानना प्रत्यक्ष सत्य से आँख मूँद लेना है। मानवेतिहास में किसानों ने अनेक बार सफल क्रान्तियाँ की हैं और अनेक बार ही उन्होंने मानवेतिहास की गति को तथा अनिष्टपूर्ण क्रान्तियों को सफलता-पूर्वक रोक दिया है।

इतिहास में इस बात के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं कि क्रान्ति करने की शक्ति मज़दूरों में इतनी नहीं होती जितनी [illegible] [illegible] किसानों में होती है। कारण यह है कि भूखे

और नङ्गो मे वह कस (Stamina) नहीं होता जो आसूदा-किसानों मे होता है। मार्क्स के अनन्य मित्र फ्रेडरिक ऐंगिल्स ने अपनी Peasent war in Germany नामक पुस्तक मे इस मत को व्यक्त किया है और भारत-सरकार के ग्राम-समस्याओ के विशेषज्ञ माल्कम ल्याल डार्लिङ्ग आई० सी० एस० ने अपनी The Punjab peasant in prosperity & debt नामक पुस्तक मे एक सौ पचानवे सफे पर इस मत की पुष्टि की है। उन्होने कहा है कि जब खाते-पीते किसान अति गरीब होने लगते है तब न केवल उनमे अपनी वेदनाओं को अनुभव करने की शक्ति ही क्षीण हो जाती बल्कि उनमे विद्रोह की भावना भी अपरिहार्य हो जाती है। फ्रांस और जर्मनी की किसान क्रान्तियो मे इसके अनेक प्रमाण मिलते है। भारत के भी उन्होने दो प्रमाण दिये है। एक बारदोली के किसान-सत्याग्रह का और दूसरा पञ्जाब के होशियारपुर तथा जालन्धर के दो समृद्ध जिलों के बब्बर अकालियो की हलचल का। दोनों जगहों के किसान खाते-पीते और आसूदा थे।

इसके विपरीत बङ्गाल के १९४३ के अकाल का प्रमाण है। वहाँ बीसियो लाख गरीब भूखो मर गये लेकिन उन्होने विद्रोह तो दूर झुटपुट उपद्रव तक नहीं किये।

लैनिन ने रूस की १९०५ की असफल क्रान्ति का वर्णन करते हुए यह माना है कि वहाँ उस समय किसानो का विद्रोह राजनैतिक, वर्ग-चेतना पूर्ण और यौवनपूर्ण था। कुल रूस के एक तिहाई जिलो मे किसानो के उपद्रव हुए। सात फीसदी के

पन्न हुआ और किसान-क्रान्तियों की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया। किसानों की ये क्रान्तियाँ केन्द्रीय और पूर्वीय यूरुप तक ही सीमित नहीं रहीं। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बाल्कन और रूस में भी किसानों की विजय-दुन्दुभी बजी। कुमारी डर्बिन का कहना है कि जमीदारों के मुकाबिले में किसान संख्या, जन-बल में कहीं अधिक होते ही हैं। जमीदार तो परम्परागत सैनिक और कृत्रिम शक्तियों के सहारे उन पर हावी हो जाते हैं। महान युद्धों के बाद ज्योंही ये शक्तियाँ शिथिल होती हैं त्योंही जमींदार किसानों के सामने नपुंसक हो जाते हैं।

किसान, भूमिहीन खेतिहरों की तरह वर्ग-चेतना शून्य भी नहीं होता। उन्हें अपने वर्ग के हित और उनकी महत्वाकांक्षायें ही संसार में सब से अधिक प्रिय हैं।

प्रथम महायुद्ध के बाद हंगरी में छोटे किसानों की पार्टी उतनी ही शक्तिशाली होगई थी जितनी वहाँ की और कोई पार्टी। आस्ट्रिया की पार्लियामेन्ट में किसानों की आसार विरोधी पार्टी थी। चैकोस्लोवेकिया पार्लियामेन्ट में कई महत्वपूर्ण दल प्रधानतया किसानों के ही दल थे। पोलैण्ड की डायट में किसानों का बहु-

किसानो का नेता ही प्रधानमंत्री। रूमानियाँ मे किसान प्रभाव-शाली होगये थे। बाल्टिक रियासतो मे किसानो ने वहाँ के कभी अति शक्तिशाली वैरनो की रियासतें छीन कर आपस में बॉट ली। जर्मनी मे भी किसानो की वहुत शक्ति बढ़ी। वहाँ के वलगेरिया प्रान्त मे किसान सर्व शक्तिमान थे। इन सब देशो में किसानो के अधिकारो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इन सब परिवर्तनो का उद्देश एक ही था। यानी बड़े-बड़े जमीदारो की जमीदारियॉ छीन कर उन्हें किसानो तथा भूमि हीन काश्तकारो में बाँटना। सब जगह जबरदस्ती (अनिवार्य) जमीदारियाँ छीनने का सिद्धान्त माना गया। हर जगह जमीदारो के लिए एक मुनासिब रकबा मुकर्रर कर दिया गया कि इससे ज्यादा जमीन के वे मालिक नही रह सकते। आम तौर पर जिन जमीदारो की जमीदारियाँ छीनी गईं, उन्हे मुनासिब हर्जाना भी दिलाया गया जिसे जमीन पाने वाले किसानों ने कई सालों में छोटी-छोटी किश्तो मे अदा किया। जमीदारो के लिए छोड़ी गई जमीन का रकबा हर देश में वहॉ की अवस्था के अनुकूल नियत किया गया।

किसानो की वावत यह सोचना कि वे अवसर मिलने पर भी उन्नति नही करते या कर सकते अथवा यह कि सदा से ही उन्होने गुलामी की जिन्दगी व्यतीत की है भारी भ्रम है। रोम के इतिहास से मालूम होता है कि वहॉ किसानो की इतनी इज्जत थी कि किसान शब्द ईमानदारी का पर्यायवाची हो गया था।

एच. हैसैल टिल्टमैन (H. Hessel Tiltman) की किसान-युरुप (Peasant Europe) कुमारी इरविन की पुस्तक के वाद की सन् १६३४ की किताव है। इसमे उन्होने बताया है कि आज भी यदि कुल यूरुप की आवादी जोड़ी जाय तो उसमे आधे से ज्यादा किसान निकलेगे।

उनका कहना है कि पूर्वी यूरुप मे विचारशील किसानो का ध्यान फैसिज्म युद्ध के डर और संसार व्यापी संकट की तरफ न होकर अपने अपने देशों के पुलिस, राज और सुनिश्चित दानवी दमन को तरफ है जिससे लाखो किसान कुचले जा रहे हैं। इस दमन के फल स्वरूप किसान फिर अपनी सुनहरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को पुनर्जीवित करने के स्वप्न देखने लगे हैं। जिसका स्वप्न पहले पहल सन् १६२४ मे वल्गेरिया के स्तान्बुलिस्के (Stan-buliske) ने देखा था।

उनका कहना है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण वात में किसान-प्रदेश एक देश है। राजनैतिक हदवन्दियाँ इधर-उधर भले ही होती रहें और भले ही वे एक हद तक जातीय भेद-भावों की द्योतक हों परन्तु वे इससे अधिक और कुछ नहीं। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि-कोण से किसान एक है, उनके हित, उनके आदर्श और उनकी समस्याएँ एक है। काले सागर से लेकर वाल्टिक सागर तक के वीच के प्रदेश में रहने वाले करोड़ो किसान एक ही क्रूर तथा कठोर संसार मे रहते है। फ्राँस, जर्मनी जैसे पाश्चिमी देशो मे वहाँ की सरकारे धन्धो की सहायता से या धन्धों के हितो को किसानो के हितो पर निछावर करके अपने यहाँ के किसानो

की रक्षा भले ही करें परन्तु असली किसान प्रदेशों मे वायना, प्रेग और जर्मनी की सीमा तक किसान ही सरकार हैं।

यूरुप मे न केवल किसान संख्या में ही आधे से अधिक हैं परन्तु दिन प्रति दिन उनकी आबादी और उनका महत्व बढ़ता जा रहा है। बलोरिया, हंगरी, पोलैंड, रूमानियाँ, जैकोस्लोवेकिया इत्यादि मे आबादी खूब बढ़ रही हैं और इन सब देशों में आबादी की वृद्धि गाँवो मे ही हो रही है, और किसानो की शक्ति तथा उनके सङ्गठन बल पकड़ते जा रहे है।

आस्ट्रिया मे वहाँ का कृषि-विभाग का मिनिस्टर हाथेलन पशु-पालक किसानो के हितों के लिए लड़ने वाला किसान नेता था। वह किसान संग्राम के हित में मिनिस्ट्री छोड़ कर अपने अनुयायियो के साथ पहाड़ो में जा बसा और वहाँ उनकी स्वाधीनता की रक्षा तथा स्वाधीनता संग्राम का सञ्चालन करता रहा। लोअर आस्ट्रिया मे अपनी जमीन के मालिक किसानो का जबरदस्त सङ्गठन है। उसका सभापति डाक्टर ब्यूरेस वहाँ का फाइनेंस मिनिस्टर और चांसलर रहा। आस्ट्रिया के सुप्रसिद्ध डाक्टर डालफस जेवी डिक्टेटर ने अपने राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ इसी संस्था के मन्त्री की हैसियत से किया।

सर्व क्रोट और स्लोवन आदर्श किसान-भूस्वामी होते हैं। क्रोटिया में किसान आन्दोलन इतना प्रचंड है कि नब्बे फीसदी किसानो की आबादी वाले इस देश मे किसानान्दोलन गैर-कानूनी करार देकर कुचला गया। उनका नेता स्टीफनरैडिग १९२८ में गोली से मार दिया गया। उसके उत्तराधिकारी नेता

डाक्टर मैकफ पर कई वार मुकदमे चलाये गये और सजा दी गई। क्रोटे का राष्ट्रीय झण्डा फहराने की मुमानियत कर दी गई फिर भी वह प्रत्येक क्रोट किसान की कुटी पर रैडिक के फोटो के साथ फहराता रहा। सरकार उसे बन्द करने मे असमर्थ रही। १९२७ के चुनाव मे क्रोटिया से चुने जाने वाले पार्लिया-मेन्ट के सरसठ मेम्बरो से से तिरेसठ किसान पार्टी के थे।

बल्गेरिया किसान जमीदारो का देश है। वहाँ करीब-करीब सभी खेतो पर उन्ही लोगो का कब्जा है जो उन्हे जोतते है। खेत और गाँव ही वहाँ के किसानो का विश्व है। जिस भूमिको किसान जोतता है उसके प्रति प्रेम उसकी हड्डी-हड्डी मे समाया है। वह धरती को माता समझता है तथा उसका एक इञ्च भी बेचना पाप समझता है। वहाँ की सरकार किसानो की इस मनोवृत्ति को जानती है तथा उनके जीवन के प्रश्नो का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए हर तरह से उनकी सहायता करती है।

रूमानियाँ मे चार सुधार-कानूनों द्वारा भूमि किसानो को बाँटी जा चुकी है। बँटवारा करते समय ईंधन और चरागाह के लिए भी काफी भूमि छोड़ दी गई है। फिर भी यहाँ के किसान सन्तुष्ट नही है। ये पार्लियामेण्टरी पद्धति द्वारा सुधारों की आशा छोड़ चुके है और अपनी खुरपी के बल पर अपने अधि-कारो की रक्षा करने को तैयार हो सकते है।

हंगरी मे भी आधी से ज्यादा जोतो पर किसानो का कब्जा है। वहाँ की सरकार ने कुछ भूमि पर आम जायदाद टैक्स

लगा कर और कुछ को जबरदस्ती क़ानून द्वारा जमीदारों से छीन कर किसानों को बाँट दिया है।

प्रथम योरोपीय महायुद्ध के बाद पोलैण्ड मे तीन लाख किसानो को नई जमीन पर कब्जा दिया गया। यहाँ के किसान अपने राष्ट्रीय नेता मकुइडस्की से बहुत प्रेम करते थे। १६३४ तक जर्मनी मे हिटलर कितना लोक-प्रिय था मकुइडस्की पोलण्ड में उससे भी अधिक लोक-प्रिय था। उक्रान के किसान अपने अधिकारो के लिए अहिंसात्मक संग्राम से काम ले रहे थे। १६३४ तक उनका यह आन्दोलन दबाया नहीं जा सका था।

अपनी उपर्युक्त पुस्तक के बारहवे अध्याय मे टिल्टमैन साहब ने किसानो की हरी क्रान्ति का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि १६१४ से लेकर १६३३ तक यूरुप के अनेक देशों मे जो क्रान्तियाँ हुई उनसे एक बड़ा ही दिलचस्प सबक यह मिलता है कि क्रान्ति करने वालो को क्रान्ति से बहुत कम लाभ हुआ।

मार्क्सवादी और पूँजीवादी दोनोही अपने को बहुत बुद्धिमान और किसानो को निरा बुद्धू समझते हैं। अपनी आपस की लडाई मे दोनो ही किसानो को अपने चंगुल मे फँसा कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते है परन्तु बुद्धू किसानों ने दोनो ही को उल्लू बनाया है। वे पूँजीशाही और मजदूर-शाही दोनो से भरपूर लाभ उठाते है और दोनो के संघर्षों से अलग रह कर उन संघर्षों के फलस्वरूप होने वाले सुधारो से अपना हित सम्पादन करते हैं।

१६१८ में आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी के राज्यों में रहने

वाले मजदूरो ने क्रान्तियाँ कीं। किसान चुपचाप हाथ पर हाथ रक्खे हुए आराम के साथ तमाशा देखते रहे। लेकिन आज इन देशो के लाल झण्डे वाले मजदूर कहाँ है? उनके नेता और उनकी पार्टियाँ खत्म कर दी गई। उनके मजदूर-संघ तोड़ दिये गये तथा उनके फण्ड जब्त कर लिये गये।

लेकिन केन्द्रीय, दक्षिणी और पूर्वी यूरोप के किसान आज भी अपनी जमीन के मालिक हैं और अपने आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकारो को भोग रहे है। कल के आधे गुलाम किसान आज इन देशो मे करीब-करीब पूरे मालिक हैं। हिटलर-मुसोलिनी जैसे डिक्टेटरो ने अपनी सत्ता किसानो के बल पर ही कायम की। किसानो को खुश करने के लिये मुसोलिनी तो यहाँ तक शेखी मारा करता था कि मैं किसान हूँ। मैने अपने पैत्रिक खेतो पर यह पत्थर लगा रक्खा है कि मुसोलिनी-परिवार की कई शाखों ने इन खेतों को अपने हाथो से जोता-बोया है।

प्रथम महायुद्ध तक यूरुप में मार्क्स की भविष्य-वाणी पूरी हो रही थी यानी किसान-वर्ग का ह्रास हो रहा था। उनकी आवादी कम हो रही थी। ग्राम ऊजड़ हो रहे थे। किसान गाँवों को छोड़ कर शहरों को भाग रहे थे। वंजर खेत शिकारगाह वन रहे थे। परन्तु युद्ध के वाद यह प्रक्रिया वदली। युद्धोत्तर क्रान्तियाँ और मध्य यूरुप के व्यक्तियो ने शहर निवासियो पर विपत्ति के पहाड़ ढहा दिये। इससे किसानो की उन्नति हुई। नाज महँगा हुआ। उनकी आवादी और उनका आर्थिक महत्त्व तथा राजनैतिक प्रभाव वढ़ने लगा।

अब तो यह बात आमतौर पर मानी जाती है कि केन्द्रीय और दक्षिण पूर्वीय यूरुप के प्रत्येक देश की आर्थिक और राजनैतिक जीवन की रीढ़ किसान ही है। इन देशों की प्रत्येक पार्लियामेंट और हर डिक्टेटर के लिये यह आवश्यक है कि किसानों को खुश रक्खे और राष्ट्रीय नीति किसानो की दुर्दमनीय शक्ति के अनुकूल बनावे। इन देशों मे व्यापारी मण्डलो (चैम्बरो) की तरह किसान-मण्डल भी स्थापित किये गये है।

जैसे कम्यूनिस्ट और समाजवादी यह चाहते है कि पहले किसानो को अपने साथ लेकर उनकी मदद से शक्ति अपने हाथ मे लेले और फिर किसानो को भी सर्वहारा बना दे वैसे ही किसानो ने भी पूंजीपतियो और खास तौर पर जमींदारो के शोषण तथा दमन से अपने को बचाने के लिए उपर्युक्त पार्टियो की मदद ली लेकिन जब उन्हे जमीन मिल गई तब वे अपने स्वतन्त्र मार्ग पर चलने लगे। और जब कम्यूनिस्टो ने भूमि का राष्ट्रीय-करण करना चाहा तब किसानो ने उनका बड़ा मुकाबिला किया और अब वे कम्यूनिस्टो की इस नीति के कारण ही सर्वत्र उनसे सशंक तथा उनके इस उद्देश की पूर्ति के मार्ग में सब से बड़ी बाधा हो गये है। इतने बड़े बाधक कि कहीं-कहीं तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वे तानाशाहियो के सहायक हो गये।

अपने खेतों के प्रति किसानों का प्रेम आज भी उतना ही प्रचण्ड है जितना आज से हजारों बरस पहले था। वे अपनी भूमि और अपने पशुओं को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार

करते है। सोवियट रूस की एक मनोरञ्जक घटना से किसानों की इस मनोवृत्ति का बहुत ही जीता-जागता प्रमाण मिलता है। एक सोवियट प्रचारक ने चिकित्सा और आरोग्यता पर जोर देने के लिए किसानो से कहा कि आप अपने परिवार वालो के जीवन की उतनी भी परवा नही करते जितनी घोड़े के जीवन की। वास्तव मे, किसान अपने एक घायल बुड्ढे को जगल मे ही छोड़ आये थे और घायल घोडे को ले आये थे। लेकिन किसानों ने इस भर्त्सना के उत्तर मे गम्भीरता पूर्वक यह कहा कि, निस्संदेह घोड़ा मनुष्य से अधिक मूल्यवान है, मनुष्य तो हम हमेशा पैदा करते रहते है लेकिन तुम घोड़ा पैदा कर के ही दिखाओ ?

किसानो के मार्ग मे एक जबरदस्त कठिनाई भी है और वह यह है कि उनका व्यापक सङ्गठन उतनी आसानी से नही किया जा सकता जितना मजदूरो का। इसीलिए उनकी हरी अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरों की लाल अन्तर्राष्ट्रीय की तरह सफल न हो सकी। फिर भी अब किसान पहले से किसान नही रहे है। कभी न बदलने वाले किसान बदल रहे है। वे स्वयं स्वतन्त्र रूप से सोचने लगे है और उनमें राजनैतिक जागरण की लहर आ गई है। वे यह अनुभव करने लगे है कि सब किसानो के हित और सब किसानो का ध्येय एक ही है। अब अपने बच्चो की शिक्षा का उन्हें बहुत अधिक ध्यान है। वे सहयोग की तरफ बढ़ रहे है। उन्हे अपनी राजनैतिक शक्ति का ज्ञान हो गया है। टिल्टमैन साहब को यह स्वीकार करना पड़ा है कि मानवेतिहास म

किसानों की निष्क्रिय-प्रतिरोध की शक्ति का कोई मुकाविला नहीं कर सकता।

किसानो के अभ्युदय से कुछ लोगों को यह भय है कि चूँकि किसान देश-भक्त और राष्ट्रीयता-प्रेमी होते है इसलिए कहीं अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व-सङ्घ और वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर प्रगति मे वाधा न पड़े। परन्तु यह भय निर्मूल है। किसानो की राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग की अड़चन न होकर उसकी सीढ़ी है। किसानो का अन्तिम ध्येय तो 'स्वदेशोभुवनमयम्' है। हाँ, अगर कोई साहव साम्राज्यवाद और मजदूर शाही कोही अन्तर्राष्ट्रीयता मान वैठें तो दूसरी वात है।

किसानों का यह पुनरुज्जीवन यूरुप तक ही सीमित नही है। वल्कि, सच वात तो यह है कि किसानो की शक्ति और उनकी जाग्रति पूरव में पश्चिम से कहीं अधिक है। वास्तव मे पूरव में अभी पश्चिम के ढङ्ग का उद्योगीकरण न होने के कारण अभी तक यहाँ की समस्या मुख्यतः किसानो की ही समस्या है। 'संसार ऐक्य' (World unity) नामक पत्र मे हंस कोहन (Hans Kohn) ने १६३२ में लिखा था:—

'पूर्वीय देशों मे जो महान सामाजिक संघर्ष हो रहे हैं वे कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के संघर्ष नहीं है वल्कि किसानों की स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले संग्राम हैं। वोल्शेविक प्रचारकों ने चीन में यह देख लिया है कि सामाजिक क्रान्ति के संघर्षों की पूर्वी देशो मे सफलता के लिए यह आवश्यक है कि किसानों की मदद [illegible] से भी ज्यादा ली जाय। पूर्वी देशों

मे आबादी बराबर बढ़ रही है और ज्यो-ज्यो आबादी बढ़ती जाती है त्यो-त्यो जमीन पर दबाव और खेतों की मॉग भी बढ़ती जाती है। पूरबी देशों मे करो का भार ज्यादातर किसानों पर ही पड़ता है। इन देशो मे लगान और मालगुजारी ही सरकारी आमदनी का मुख्य आधार है। किसानो का कर्जा भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है।'

भारत का किसान भी किसी से पीछे नही। खेती के काम मे वह उतना ही हुशियार है जितना किसी भी देश का किसान। डाक्टर वोइल्कर ने भारत के किसानो की प्रशंसा की है। सर जान रशल ने भी यह माना है कि हिन्दुस्तान के किसान उतने ही अच्छे है जितने संसार के अन्य किसी भी देश के किसान। हिन्द-सरकार ने भी अपने एक नोट मे कहा है कि आमतौर पर हिन्दुस्तान का किसान भी उतना ही धीर, मेहनती और बहुत-सी हालतो में चतुर किसान है जितना दुनिया के परदे पर किसी भी देश का किसान।

और हिन्दुस्तान वास्तव मे किसानिस्तान है। हिन्दुस्तान की समस्या किसानो की समस्या है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने यह ठीक ही कहा है कि कारखानों के मजदूरो के दृष्टि-कोण से हिन्दुस्तान की समस्या का कारगर हल नही मिल सकता। यहाँ तो राष्ट्रवाद और ग्रामीण सुव्यवस्था ही सबसे बड़े सवाल हैं। यूरुप का समाजवाद इनके बारे मे शायद ही कुछ जानता हो।

रूस मे महायुद्ध से पहले की हालत हिन्दुस्त
कुछ मिलती-जुलती है लेकिन वहाँ तो बहुत ही अ

गैर-मामूली घटनाएँ घटीं। वैसी ही घटनाएँ दूसरी जगह भी होंगी यह उम्मेद करना मूर्खता होगी। कम्यूनिज्म के तत्वज्ञान से किसी भी देश की विद्यमान परिस्थिति को समझने और उसका विश्लेषण करने में सहायता मिलती है और आगे प्रगति का रास्ता मालूम होता है परन्तु उस तत्वज्ञान को, वास्तविकता और अवस्था का समुचित ध्यान रक्खे बिना, अन्धे की तरह सर्वत्र लागू करना उस तत्वज्ञान के साथ बलात्कार और अन्याय करना होगा।

महात्मा गांधी ने तो स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि भारत का उद्धार किसानों के हाथ होगा—धनी, वकील, डाक्टर और जमींदारों के किये नहीं। हिन्दू-मुस्लिम परिगणित जातियाँ और देशी नरेशादि के साम्प्रदायिक तथा विशेष समस्याओं का हल भी किसानों के ही हाथ में है क्योंकि नब्बे फीसदी के करीब परिगणित जातियाँ किसान ही हैं और देशी राज्यों तथा मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों में भी भारी बहुमत किसानों का ही है।

माना, किसान अभी साधक है, सिद्ध नहीं। अभी स्वभावतः आदर्शों और व्यवहार में महान अन्तर है। और साधकों में भी उच्चतम से लेकर निम्नतम तक सभी प्रकार की सहस्रशः श्रेणियाँ हैं। फिर भी पथ के दावेदारों की कमियों ने पथ की परिष्कृतता से कोई कमी नहीं आती। पथ ठीक है तो पथ-भ्रष्टों को सन्मार्ग पर लाने का ही सवाल बाकी रह जाता है और वह कोई ऐसा कठिन काम नहीं है।

——— ———

कष्ट-कथा

किसानो की कष्ट-कथा अकथ है—उसका कोई ओर-छोर नहीं। सबके अन्नदाता, सबके प्राण-रक्षक तथा मानव समाज, सभ्यता और संस्कृति के स्रष्टा किसानो के साथ जो व्यवहार हो रहा है वह विधि की विडम्बना का अद्वितीय उदाहरण है।

परन्तु किसान, धरतीमाता को ही तरह सर्वसहा है। हजारों ही बरस से वे गरीबी और गुलामी, दमन और शोषण, अज्ञान और विज्ञान के शिकार रहे है। संसार मे सर्वत्र उनके साथ गूँगे बैलों जैसा ही बर्ताव किया गया है।

आङ्गल अर्थशास्त्र के आचार्य डाक्टर मार्शल ने यह ठीक ही कहा है कि गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप है। गरीबी के कारण किसान स्वयं अपनी जिन्दगी से पशुओं की जिन्दगी अधिक बहुमूल्य समझते है। पञ्जाब के भूतपूर्व गवर्नर और अब समाजवादी जान मैनार्ड साहब ने अपनी प्रामाणिक तथा विद्वत्तापूर्ण पुस्तक "रूसी किसान" (The Russian Peasant & Studies) मे १७५ वे पृष्ठ पर लिखा है कि किसान अपने परिवार या अपनी बीबी के स्वास्थ्य की चिन्ता से कहीं अधिक चिन्ता अपने घोड़े या अपनी गाय के स्वास्थ्य की करता है। वह कहता है, आदमी तो हम मे से कोई भी पैदा कर सकता है लेकिन जरा घोडी तो पैदा करके दिखाओ ?

गरीबी के कारण किसानों को स्वयं अपनी देह और आत्मा ही नहीं, अपनी बहू-बेटी तक बेचनी पड़ती है। मौरिस हिन्दुस ने 'ह्यूमैनिटी अपरूटेड' नामक पुस्तक में यह दिखाया है कि नौकरी की खोज में गाँव छोड़ कर शहर आने वाले किसानों की बहू-बेटियों को किस तरह अपना पेट भरने के लिये वेश्या बनना पड़ता है। अप्टन सिनक्लेयर ने भी समाज के इस काले पहलू का बहुत ही सजीव चित्र अपने उपन्यासों में खींचा है। गरीबी के कारण ही किसान चोरी-डकैती आदि अपराध करते हैं और इनकी गरीबी के लिए जिम्मेदार पापी समाज इन्हें जेलखानों में बन्द करके इन्हें हमेशा के लिए 'अपराधी' बना देता है। गरीबी के कारण ही वह तरह-तरह के अन्यायों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होता है और वह सब के शोषण तथा दमन का शिकार होता है। उसे सभी का गुलाम होकर रहना पड़ता है।

यों तो कुछ सम्मानीय अपवादों को छोड़ कर, संसार भर के किसान, न्यूनाधिक मात्रा में गरीब ही हैं परन्तु हिन्दुस्तान के किसानों की गरीबी का तो कोई मुकाबिला ही नहीं कर सकता। कनाडा और संयुक्तदेश अमेरिका में एक मामूली मजदूर हफ्ते भर में जितना कमा लेता है उतना हिन्दुस्तानी किसान साल भर में भी नहीं कमा पाता। हर हिन्दुस्तानी की गिनी हुई औसत आमदनी से संयुक्त देश अमेरिका निवासी प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी तीस गुनी है और ग्रेट ब्रिटेन वालों की बीस गुनी। यह गरीबी

किसानो की जीवन-संगिनी होती है। किसान गरीवी में पैदा होकर गरीवी मे ही अपनी मुसीवतजदा जिन्दगी के दुःखमय दिन काट कर गरीवी मे ही मर जाता हैं और मरते वक्त भी अपने वाल-वच्चो को गरीवी का अभिशाप दे जाता है। हिन्दुस्थान की सरकार की तरफ से ब्रिटिश पार्लियामेंट् को हर साल हिन्दुस्थान की नैतिक और भौतिक दशा की एक रिपोर्ट "हिन्दुस्थान" अमुक सन् मे शीर्षक से पेश की जाती है। १६२६-१६३० की इस रिपोर्ट मे यह लिखा हुआ हैं कि हिन्दुस्थान के गॉव निवासियो की सवसे वड़ी और खास खसूसियत उनकी गरीवी ही है। यह साफ तौर पर एक वाकया है कि हिन्दुस्थान के निवासियो का एक वहुत वड़ा हिस्सा ऐसी किस्म की गरीवी से घिरा हुआ है कि पश्चिमी मुल्को मे जिसकी मिसाल ही नही मिल सकती। १६३०-३१ की रिपोर्ट मे लिखा है कि असूमन गॉव निवासियों की सव से वड़ी विशेषता उनकी गरीवी ही है। गरीव किसानो का रहन-सहन वहुत ही नीचे दरजे का है। ऐसी भुखमरी मे वीमारियों से रक्षा करने की शक्ति कहॉ? फलस्वरूप वे तरह-तरह की वीमारियो के शिकार होते है और हर साल लाखो मक्खियो की मौत मरते है।

डाक्टर राध कमल मुकर्जी ने अपनी Fried and Farmer in Oudh नाम की पुस्तक मे लिखा है कि चार एकड़ जमीन से पॉच आदमियो के किसान परवार का भी इस तरह गुजारा नही हो सकता कि जिससे वे जरा भी आराम से जिन्दगी विता सकें और अपनी क्षमता कायम रख सके। लेकिन हरदोई जिले

मालीपारा गाँव में किसान परिवार की औसत सात आदमियों की है। इसमें से सौ पीछे छियासठ यानी दो तिहाई की औसत जोत चार एकड़ से भी कम है। नतीजा, असह्य कष्ट और बेहद गरीबी।

The preasure of population नामक पुस्तक के दूसरे तीसरे पृष्ठ पर अन्वेषी लेखक ने लिखा है कि गोरखपुर जिले में एक गाँव मे औसत सिर्फ आधी एकड़ है। इतनी छोटी जोतो मे बैलो की जगह फावड़ा से खेत जोता जाने लगा है। अगर यही हालत रही तो चीन की तरह हिन्दुस्तान मे भी बैलो और भैसों की जगह औरते जोती जायँगी। इसी पुस्तक के छब्बीसवे पृष्ठ पर यह लिखा है कि गोरखपुर के वेलनपुर गाँव मे एक औरत वाकई बैल की जगह हल में जुती हुई देखी गई।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने १९२६ के शाही कृषि-कमीशन के सामने अपने प्रान्त में कृषि की दशा पर एक रिपोर्ट पेश की थी उसके दूसरे अध्याय मे यह लिखा है कि दूध सिर्फ खुशहाल लोगों के लिए जरूरी माना जाता है। गरीबों के लिए दूध विलासिता की चीज है। इसी रिपोर्ट के चौदहवें अध्याय मे लिखा है कि बालकों की मृत्युसंख्या बहुत ज्यादा है। हर साल हजारों बच्चे जन्म लेने के साल भर के अन्दर ही काल के कौर हो जाते हैं और "बच्चों की बीमारी, कमजोरी और मौत का एक बड़ा कारण दूध की कमी है।" किसान इतने गरीब हैं कि वे मलेरिया से अपने प्राण बचाने के लिए कुनैन तक नहीं खरीद सकते। यू० पी० के स्वास्थ्य-विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर मिन्टर

डन ने यह स्वीकार किया था कि कुनैन की कीमत किसानो के लिए बहुत ज्यादा है।

सूबे हिन्द की १६२६-३० की बैंको की जाँच-कमेटी का कहना है कि इस सूबे के किसानों की ज्यादा तादाद ऐसी है जिन्हे अपनी जिन्दगी लगातार एक फसल से दूसरी फसल तक का आसरा ताकने मे ही बितानी पड़ती है। इनका रहन-सहन बहुत ही नीचे दरजे का है। तीस फीसदी किसान आर्थिक सतह से नीचे रहते है। ये अच्छी से अच्छी फसल होने पर भी अपना तथा अपने परिवार का पेट नहीं भर सकते। बावन फीसदी आर्थिक सतह से जरा ऊपर रहते है। अच्छी फसल होने पर इनका काम चल जाता है लेकिन फसल बिगड़ने पर इनकी जिन्दगी भी दूभर हो जाती है। सिर्फ अठारह फीसदी खुशहाल माने जा सकते है। सो वे भी सिर्फ सबसे गरीब मुल्क हिन्दुस्तान के भी सबसे ग़रीब सूबे संयुक्तप्रान्त मे, अत्यन्त नीचे रहन-सहन के मापदण्ड से ही खुशहाल माने जाते थे! किसान इतने ग़रीब है कि कानपुर कृषि कालेज के प्रिन्सीपल एच मार्टिन लीक के कथनानुसार नाज होते हुए भी, नाज पैदा करने वाले किसान तथा उनके बालबच्चे पैसा पास न होने की वजह से भूखो मर जाते हैं।

मिस्टर आरननॉल्ड लप्टन ने अपनी हैपी इण्डिया नामक पुस्तक (पृष्ठ ४५) मे लिखा है कि हिन्दुस्तान के किसान इतने गरीब है कि उनके मुकाबिले मे अँग्रेज भिखारियो को अच्छा

खाना मिलता है। औसतन अंग्रेज भिखारी को न सिर्फ हिन्दुस्तान के किसान से खाना ही बहतर मिलता है बल्कि उसके पहनने के कपड़े और रहने का मकान भी बहतर होता है। ज्यादातर हिन्दुस्तानी किसानो की हालत अंग्रेज भिखारियो से भी बद्तर है।

इटावा के एक भूतपूर्व कलक्टर मिस्टर एलैक्जैण्डर का कहना है कि साधारण सालों में भी किसानों को चार महीने बौहरे से क़र्ज़ लेकर खाना पड़ता है। एक सरकारी रिपोर्ट का कहना है कि किसानो की जोतें छोटी-छोटी है। इन जोतों की पैदावार से छः महीने से ज्यादा गुजारा नहीं हो सकता। बाकी छः महीने क़र्ज से काटने पड़ते हैं। और यू० पी० की बैङ्किङ्ग जॉंच कमेटी के शब्दों में एक दफ़ा कर्ज लेने पर किसान हमेशा कर्ज के दलदल में दिन पर दिन गहरा धसकता जाता है जिससे मौत ही उसका पीछा छुड़ाती है। लेकिन मौत भी सिर्फ उसी का पीछा छुड़ाती है क्योंकि उसकी जगह उसके वारिसों की जान कर्ज के कटहरे मे फँस जाती है।

डाक्टर एस० एस० नेहरू आई० सी० एस० ने अपनी (Baste and Credit in india) नामक पुस्तक में लिखा है कि किसानों पर जितना कर्ज है वह अनिवार्य है। सोलहो आने अनिवार्य। अगर हम यह याद रक्खें कि किसान को सुबह खाकर शाम की फिकर रहती है और अकाल तथा अभाव और अभाव तथा अकाल की हद अपेक्षाकृत बहुत ही कम चौड़ी और अस्पष्ट है तो हमें किसानों के क़र्ज़ की अनिवार्यता

मे कोइ सन्देह ही न रहे । डा० राधाकमल मुकर्जी का कहना है कि वहुत सा कर्ज एक युग मे अदा ही नही किया जा सकता। मौजूदा क़र्ज की मार का एक दुखःदायी नतीजा यह होता है कि वेचारे किसान को गरीबी और गुलामी की जिन्दगी वितानी पड़ती है।

उन्नाव जिले की आर्थिक दशा की जाँच करने वाले सज्जन का कहना है कि "जिले के इस कोने से उस कोने तक किसानों मे शायद ही कोई ऐसा मिले जो क़र्ज से न दबा हो और वौहरों के पञ्जो से वचा हो। जिले मे ऐसी मिसालो की कमी नही है जिनमे वेचारे किसानो को उन बाप-दादों का नाम तक याद नहीं जिनका क़र्ज मजबूरन उनको देना पड़ रहा है। लखनऊ जिले के रूधई गाँव के नव्वे फीसदी किसान क़र्ज से लदे पाये गये है।

इस क़र्ज का नतीजा यह होता है कि फसल तैयार होते ही महाजन आ धमकता है। वह किसान की पैदावार का ज्यादातर हिस्सा ले जाता है। ज्यादातर किसानो को खेती की लाग तथा खाने-पीने के खर्च को क़र्ज लेने के लिए फसल कटने से पहले ही गिरवी रख देनी पड़ती है। वहुत सी हालतो मे फसल तैयार होने से पहले ही कुड़क कर ली जाती है। ऐसी हालत मे किसान को उसको पैदावार के आधे दाम भी मुश्किल से मिल पाते है। किसान अपनी फसल को छू तक नहीं सकता। कभी कभी तो तमाम फसल खलिहान मे ज्यों की त्यो पड़ी रह जाती है उस

पर दायँ भी नहीं चल पाती और इस बीच में पानी बरस जाने से तमाम फसल या तो बह जाती है या खराब हो जाती है। अर्थशास्त्र के अध्यापक श्री गिरिवरसहाय सक्सेना ने लखनऊ जिले के रूधई गाँव की पूरी पक्की जाँच करके लिखा है कि—औसत किसान फी व्यक्ति पन्द्रह रुपए साल, सवा रुपया माहवार से ज्यादा नहीं कमा पाता। इसमे उसकी मजदूरी और इन्तिजाम का मुनाफा शामिल है। अलीगढ़ के रिटायर्ड रजिस्ट्रार सैयद तुफैल अहमद के कहने के मुताबिक किसान के लिए मूल तो दूर ब्याज पटाना भी मुश्किल हो जाता है। प्रोफेसर दयाशङ्कर दुबे एम० ए० ने हिन्दुस्तान भर के लोगों की खुराक के सवाल की जाँच करके बताया है कि जितनी खुराक हर शख्स को मिलनी चाहिए, हिन्दुस्तान के दो तिहाई लोगों को यानी बीस करोड़ से ऊपर को उसकी तीन चौथाई खुराक नहीं मिलती, उतनी खुराक भी नहीं मिलती जितनी हिन्दुस्तान की ही जेलों में कैदियों को दी जाती है। शाही कृषि-कमीशन के एक मेम्बर प्रोफेसर गङ्गोली का कहना है कि प्रोफेसर दया-शङ्कर दुबे की इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता। जगत्प्रसिद्ध अङ्गरेज पत्रकार मि० ब्रेल्सफोर्ड का कहना है। "किसानों के बच्चों को मा के दूध के बाद दूध के दर्शन नहीं होते। वे कर्ज से पली हुई छायामात्र हैं। ज्यादातर बालकों को आँख की या त्वचा खराबी की कोई न कोई बीमारी होती है, बहुतों का पेट बढ़ा हुआ होता है जिससे मालूम होता है कि मलेरिया से उनकी तिल्ली बढ़ गई है। ज्यादातर बालकों

हाथ-पैर ऐसे मालूम होते है मानो गॉठो मे सूखी हुई काली लकड़ियाँ हिलगा दी गई हो।

गरीबी से गले और कर्ज मे फँसे हुए किसानो की जिन्दगी ही क्या है ? सन् १८२२ मे एक बड़े तजरुबेकार अङ्गरेज ने जो हिन्दुस्थान के एक अहाते के गवर्नर भी रह चुके है, कहा था:—किसानो की बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि वे जिन्दगी बसर करते है, सिर्फ यही कहा जा सकता है कि वे जिन्दे है, मरे नही है।

वास्तव मे हिन्दुस्तान के किसान जीते हुए भी मरे के समान है। वे सिर्फ मरते नही और सब कर्म हो जाते है। देश के ज्यादातर किसान, फूस से छाये हुए मिट्टी के घरो ही मे रहते है। सिर्फ पञ्जाब के किसान इसके अपवाद भले ही हो, सो भी वहाँ के सब जिलो के नही। बहुत से सूबो मे तो ज्यादातर बौहरो और जमीदारो के मकान भी पक्के नहीं होते। पूरे पक्के मकान बड़े जमीदारों और मालदार बौहरो के ही होते है। जिस किसान के कच्चे मकान पर भी छत हो चौका तथा उठने-बैठने और सोने की कोठरियाँ अलग-अलग हो और बरामदा भी हो उसे सौभाग्य-शाली समझिये। साधारणत. भुस, घास, करब-कूड़ा, भैस, गाय बैल, बकरी वगैरः भी मकान के भीतर उसी अहाते मे रहे तो कोई बात नहीं। बहुतो को छत भी नसीब नही होती। फूस का छापर ही डाल लेते है। मकान भर मे सिर्फ एक कोठरी होती है.

जिसमें एक तरफ रोटी बनती है, दूसरी तरफ उठना-बैठना होता है। मर्द, औरत और बच्चे जानवरों के साथ एक ही छप्पर में सो रहते हैं। गोरखपुर जिले के बहुत से गाँवों की जाँच करने पर यह पाया गया कि एक-एक झोंपड़ी में औसतन आठ से लेकर बारह-बारह व्यक्ति रहते हैं। और ये सब के सब जानवरों के साथ एक ही छप्पर में सोते हैं। अनेक किसानों के लिए तो घर सिर्फ टाँगें सीधी करने और रात में पड़ रहने भर की जगह है। बहुत सी जगह किसी तरह का एकान्त न रहने की वजह से हया-शर्म रखना असम्भव हो जाता है। जिन घरों का प्रभाव उन्नायक तथा सौन्दर्योत्पादक होना चाहिए वे विपत्तियों और बीमारियों की ऐसी मांदें बनी हुई हैं जहाँ लोग मक्खियों की तरह पैदा होते और मक्खियों की तरह ही मरते हैं। जिला गोरखपुर तहसील देवरिया के एक गाँव में ७×१३×५ फीट की एक झोंपड़ी में एक कुम्हार उसकी कुम्हारिन, उसका बेटा तथा बेटे की बहू तथा एक नाती ये पाँच व्यक्ति सब बकरे के सोते थे। ९×१४×५ फीट की दूसरी झोंपड़ी में एक कुम्हार अपनी कुम्हारिन, तीन बच्चों और बैलों के साथ सोता था। फलतः ये लोग बहुत ही गन्दे और बीमार थे।

बहुत से गाँवों के लोग घरों में सोने की जगह न होने की वजह से घर से बाहर पेड़ों के नीचे या खेतों में फूस की झोंपड़ी डालकर सोते हैं। एक गाँव में अन्वेषक अध्यापक ग्यारह-बारह बालकों को एक ही जगह कुत्तों के साथ पड़ा देखकर दंग रह गया।

जिनके पास जैसा-तैसा घर भी है उनके पास फर्नीचर के नाम पर चारपाई के अलावा और कुछ नहीं होता। हिन्दुस्तान के आई-सी-ऐसो की तरह किसानो की चारपाई उनके सब काम कर देती है। उसी पर उनके कपड़े-लत्ते रहते है। उसी पर वे रात को सोते तथा दिन को बैठते हैं। उसी पर अतिथियो को विठाते हैं। वहुतो को चारपाई भी नसीव नहीं होती। वेचारे जमीन पर ही उठते-वैठते है उसी पर पड़ रहते है। वैठने के लिये तख्त, मूढ़े, चौकी वगैर तथा अफसरो की आव-भगत के लिये दो-एक कुर्सी थोड़े से खाते-पीते लोगो के यहाँ ही होती हैं। गाँवो मे ये चीजे विलासिता की, अमीरी की सूचक मानी जाती है।

किसानो की वहुत वड़ी तादाद—करोड़ो किसान—जिन्दगी भर यह नही जान पाते कि दोनो वक्त भरपेट खाना किसे कहते है। वेचारे जैसा और जितना जो कुछ मिल जाय उसी से संतोष करते हैं। मोटे नाज की रूखी-सूखी रोटी भरपेट मिल जाय तो वड़े भाग समझिये। वे गेहूँ पैदा करते है, अमीरों के लिए, कर्ज तथा लगान चुकाने के लिए, और मका, ज्वार, वाजरा वगैरः उगाते है अपने तथा अपने परिवार के पेट की आग वुझाने के लिए। सैप हिगेन वोटन साहव का कहना है कि किसान अभी तक कच्चा वाजरा खाते है और कम से कम कपड़े पहनते है। उन वेचारो को घी-दूध फल तो दूर हरी तरकारी तक नसीव नही होती। कही साग-पात मिल गया तो ईश्वर की कृपा समझिये नही तो नमक-मिर्च के सह

रोटी लील लेते है। खाते-पीते किसानों को दाल और ईख के दिनों में गुड़ या ईख का रस भी मिल जाता है। श्री भोलानाथ मिश्र ने ऊपर की सब बातों की ताईद करते हुए लिखा है कि बेचारे किसान दावतो के मौको पर गेहूं की रोटी खाते हैं। उनकी यह राय मि० एस० एन० ए० जाफरी को अपनी History and status of Landlords & tenants in United Provinces मे उद्धृत की है। यह तो सभी विशेषज्ञों का कहना है कि हिन्दुस्तान के करोड़ो किसानों को पूरा पोषक भोजन नहीं मिलता। शाही कृषिकमीशन का कहना है कि हिन्दुस्तान मे पोषक भोजन की कमी से जितने लोग मरते हैं उतने अकालो और महामारियों से भी नहीं मरते।

किसानों के कपड़े नहीं के बराबर होते है। गरमियों मे वे सिर्फ धोती-लँगोटी पहने रहते है। जब कहीं आना-जाना हो, मेला या तीज-त्यौहार हो तो 'धरऊ' पोशाक पहन लेते हैं यानी लडके कुरता-टोपी और वयस्क मिरजई, साफा या अँगरखा, पगड़ी। जूता, धोती, टोपी या फेंटा और अँगोछा, गरमियो मिरजई और जाड़ो मे रूईदार कोट और बहुत बढ़ गये त पजामा यह आसूदा किसानो की पोशाक है। किसान-स्त्रि लहँगा, ओढ़नी और अँगिया में गुजारा करती है। किसान इ कपडो को जब कभी खुद ही गाँव की पोखर में धो लेते हैं किसानों की पोशाक का यह वर्णन over population in Jaunpur नामक पुस्तक के ४२ वे पृष्ठ पर लिख गया है।

ज्यादा अमीरो के पास ज्यादा धरऊ और कीमती कपड़े भी होते है लेकिन ज्यादातर किसान धोती या लँगोटी पहन कर रहते है। खुशहाल किसान सलूका पहन लेते है। जाड़ों मे दुहरा या रुईदार सलूका पहन लेते है। किसानो की स्त्रियाँ बहुत मामूली लहँगे, ओढ़नी और अँगिया से ही अपनी शर्म ढकती है। बहुतो को इतने कपडे भी नसीब नहीं होते। ओढ़ने-बिछाने को अमीरो के यहाँ गरमियो मे दरी, दुतई और चादरा तथा सर्दियो मे गद्दा-रजाई होते है। ज्यादातर किसानो के पास एक दोहर होती है जिसे वे शुरू सरदी मे यो ही ओढ़ लेते है, और ज्यादा सर्दी पड़ने पर उसमे रुई भर लेते है। बहुतो को इतने कपड़े भी नसीब नही होते। पुआल मे पड़कर या जाड़े भर आग तापते हुए रात काटते है।

किसानो की गरीबी का एक चित्र देखिये। मालपारा जिला हरदोई के बल्टी नट शिकमी काश्तकार के तीन बच्चे है। वे हमेशा भूखे रहते है। उन्हें पोषक तो क्या, कैसा भी खाना भर पेट बहुत कम नसीब होता है। एक-दो रोटी माँग कर खा ली तथ पानी पी लिया। यो ही खाली ज़मीन पर रात भर पड़े रहते है ताल्लुकेदार साहब दया करके पयाल दे दे तो भाग जगे समझिये गरमियों के छः महीने तो नंगे रहते ही है। जाड़ो मे भी अगर कोई कपड़ा दे दे तो ठीक नहीं तो अघियाने के सहारे रा काटनी होती है। गरीबी के मारे हुए किसान बैठी हुई आँख वाले नर-कङ्काल मात्र होते है। यू० पी० सरकार ने [illegible]

विभाग के भूतपूर्व इञ्चार्ज मिस्टर एस० एन० जाफरी का कहना था कि ज्यादातर किसानो के कपड़े बहुत ही तुच्छ होते है।

नंगे और भूखे किसानों को दिन-रात कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। मूसलाधार मेह हो, या प्राणघातक लू, या विकट से विकट सर्दी, किसान को अपना काम करना ही पड़ेगा। आराम और आनन्द किस चिड़िया का नाम है यह वे सपने मे भी नहीं जान पाते।

सुबह बड़े तड़के उठ कर उन्हे रात के नौ-दस बजे तक काम करना पड़ता है। अक्सर खेत की रखवाली के लिए खेत पर ही झोपड़ी मे सोना पड़ता है। उजेली रात में सुबह तीन-चार बजे से हल जोतने लगते है। घर पर भी जानवरों को चारा तैयार करने, उन्हें दुहने आदि का काम करना पड़ता है। मतलब यह कि कैदियों को जेलो मे उतनी मशक्कत नहीं करनी पड़ती जितनी किसानो को।

किसान-स्त्रियों का जीवन भी कड़ी मेहनत का जीवन होता है। मर्दों से पहले उठकर वे मकान को झाड़ती-बुहारती है। आटा पीसती तथा चौका-बर्तन करती है। फिर खाना बनाकर खिलाती खाती हैं। बाल-बच्चों को नहलाती-धुलाती और खाती पिलाती हैं। शाम को फिर खाना बनाकर और सबको खिलाकर तब खुद खाती है। मरदों के बाद सोती हैं। सुबह-शाम पानी भर कर लाती हैं और घर-गृहस्थी के इन तथा ऐसे और अनेक मों के अलावा खेतों पर भी काम करती हैं।

किसानों के बालक बचपन से ही काम मे जुट जाते है। खेतो पर खाना लेजाना, तमाखू भरना, जानवरो का चराना, खोलना बॉधना ये सब काम बच्चो को करने पड़ते है। कुछ और बड़े हुए कि नराव का काम लिया जाने लगा। किसान कुमार चौदह बरस के होते-होते पूरे किसान का काम करने लग जाते है। किसान-कुमारियॉ, झाड़ा-बुहारी, चौका-बर्तन, बाल-बच्चों की सम्हाल वगैरह मे मॉ का हाथ बॅटाती है।

इस जिन्दगी मे खेलो को जगह कहॉ? घरेलू खेलो की कौन कहे मैदान के पुराने खेल, कबड्डी, गिल्ली-डन्डा, ऑख मिचौनी गेद-बल्ला वगैरह भी घटते-मिटते जा रहे है। खेलों की तरह विश्राम और मनोविनोद को भी किसानो के जीवन मे रहने योग्य स्थान नही। कभी कोई सारङ्गी वाला आगया तो कभी कोई जोगी बैन बजाता आ पहुँचा। कभी-कभी आल्हा-ढोला और भजन गाने वाले तथा भॉड, नट, सपेरे, बाजीगर, बहुरूपिये रीछ-बन्दर के मदारी और नादिये वाले भी हो जाते है। किसी खुशहाल की व्याह-शादी में रास, नौटंकी, भजन-मण्डली वगैर का आनन्द मिल जाता है। नही तो जिन्दगी तेली के बैल की तरह किसनई का कोल्हू पेरते ही बीतती है। मन बहलाव के इन बहानो के अलावा किसानो की जिन्दगी एकदम नीरस, निरानन्द, कड़ी मेहनत परेशानी और जमीदार बौहरे वगैरह की हाऊ-हड़प नीति से पीड़ा की जिन्दगी है। मन-बहलाव की जिन बातो की चर्चा की गई है वे विरलो को बड़े भाग्य से ही मिलती है। पिलनक नाम के नामी रूसी लेखक के

"किसानों की जिन्दगी सबको मालूम है—काम कर सकें इसलिए रोटी खाना और खाने को रोटी मिल सके इसलिए काम करना। इसके अलावा खुद पैदा होना, बच्चे पैदा करना और मर जाना।

समाज में किसानों की न कोई इज्जत है, न उनका कोई स्थान। किसान होना सब से छोटा होना सब का गुलाम होना है। गरीब की लुगाई सब की भौजाई वाली बात है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने शाही कमीशन के सामने कहा था, "हर शख्स किसानों को बुरी निगाह से देखता है। पुलिसमैन, तहसील का चपरासी, जमींदार का नौकर, सब किसानों को नीची निगाह से देखते हैं। उनके साथ फुटबौल का सा बर्त्ताव किया जाता है—उन्हें फुटबौल की तरह लतिआया जाता है। यह समझा जाता है कि दब कर रहना जमींदार और अफसरों तथा अहलकारों के सामने सर झुकाए रहना किसानों का फर्ज है। अगर जमींदार या अहलकार से बात-चीत करते हुए किसान नजर उठा कर देख ले तो उनकी भारी गुस्ताखी समझी जाती है।"

वास्तव में सब के सब अपने को किसानों के सामने साक्षात शाहंशाह समझते हैं। एक मजिस्ट्रेट ने खुद यह कहा था कि पटवारी शाहंशाह का एजेन्ट है। किसानों और खेतों के मजदूरों से गुलामी अब भी जारी है। जमींदार हर तरह से इस बात की [illegible] करते हैं कि किसान हमेशा उनका गुलाम बन कर रहे।

किसान जरा भी सर उठाता है तो कुचल दिया जाता है। पुलिस, जमींदार और अहलकारो के खिलाफ किसान सच्ची गवाही तो कभी दे ही नहीं सकते। उनके दबाव से किसानों को बहुधा झूठी गवाहियाँ देनी पड़ती है। जब तक कांग्रेस के प्रयत्न से जन-जाग्रति नही हुई थी तब तक वोट के वक्त भी जमींदारो के लठ्ठबन्द नौकर जिधर चाहते थे किसानो को भेड़ों की तरह हाँक ले जाते थे। डबलू० एच० मोरलैन्ड ने अपनी From Akbar to Aurangazeb नामक पुस्तक के दोसौ छत्तीसवें पृष्ठ पर जो यह लिखा है कि किसान होने से तो चपरासी होना कहीं अच्छा है यह आज तक अक्षरशः सही है। खेती के मजदूरो की खासतौर पर परिगणित जातियो के लोगो की जिन्दगी और भी कष्टमय होती है। राजा जगन्नाथ बख्शसिंह ने शाही कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि वालिग मजदूरों को चार आना रोज तक और बच्चो तथा औरतो को डेढ़ आना रोज तक मजूरी दी जाती है। उन्नाव में मर्द मजूरो को तीन आने से लेकर छः आने तक मजूरी मिलती है लेकिन सिरसाहेरी गाँव को जमींदार लोग दो आना रोज़ से कम देते थे। कुछ जगह के तअल्लुक़ेदार इससे भी कम।

यो तो संसार के बहुत से देशो मे, विशेषकर अपने को लोकतंत्र के ठेकेदार कहनेवाले देशो मे भी शासन मे किसानो की कोई आवाज नहीं, राज-काज मे उनका कोई हाथ नही। इङ्गलैण्ड में अल्पमत की रक्षा के नाम पर हाऊस आफ लार्डस् है लेकिन अल्पमात संरक्षक किसानों की रक्षा के लिए कोई हाउस आफ

नहीं। अमेरिका में भी किसानों का कोई विशेष प्रतिनिधित्व नहीं। अमेरिका की मैसेच्यूसैट रियासत के कृषि कालेज में सभापति केनियन एल बटर फील्ड का कहना है कि वहाँ राष्ट्रीय मामलों में किसानों के प्रतिनिधित्व का अभाव है। किसानों की बात कहने वाले किसान प्रतिनिधियों की तथा ऐसी किसान संस्थाओं की एक दम में कमी है जो केन्द्रीय राष्ट्रीय मामलों में किसानों का दृष्टिकोण रक्खें उनकी आवाज़ बुलन्द करें, उनकी बात कहें। अमेरिका के पत्रों और पुस्तकों में किसानों की चर्चा तक नहीं होती। ब्रिटिश मजदूर-दल भी किसानों की चर्चा तक नहीं करता।

लेकिन हिन्दुस्तान में किसानों की गुलामी का मुकाबिला कोई नहीं कर सकता। जहाँ प्रथम महायुद्ध के बाद यूरोपीय देशों में टिल्टमैन के कथनानुसार वहाँ के किसानों की राजनैतिक शक्ति बढ़ी, कृषि सुधार के कानून बने, सहयोग समितियों और बैंकों का विकास हुआ, किसानों के हितों को व्यक्त करने के लिये व्यापारी मंडलों की तरह किसान-मण्डल बने कृषि सम्बन्धी शिक्षा में वृद्धि हुई, खेती के मजदूरों की सामाजिक सेवा करने वाली संस्थाएँ बनीं, किसानों के हितकारी अनेक कानून बने वहाँ हिन्दुस्तान में यहाँ की सरकार ने जमींदारों और राजा-महाराजाओं तथा नवाबों के विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाए, कई सूबों में उनकी विशेष व्यवस्था-सभायें कायम कीं अन्य व्यवस्थापिका सभाओं में उनको

विशेष प्रतिनिधित्व दिया लेकिन किसानो के लिए शासन विधान मे हिस्सा देने के लिए विशेष कुछ नही किया।

और तो और जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य के ही उपनिवेशो की सरकारो ने पिछले चालीस बरस मे यानी बीसवीं शताब्दी में किसानो को अपना माल बाहर भेजने और बाहर से माल मँगाने के साधनो, यातायात के साधनो उनके लिए सुविधा पूर्वक कम व्याज पर कर्जा लेने के साधनो का, शिक्षा की सुविचारित व्यवस्थाओ का, किसानो को हितकर बाजारों के निर्माण का विशेष प्रबन्ध किया वहाँ हिन्दुस्तान की सरकार ने कुछ भी नही किया।

हिन्दुस्तान मे किसानो की बेकदरी, उनके हितो की उपेक्षा की यह हालत है कि खेती की तरक्की के तरीको की जाँच करने के लिए जो शाही कमीशन बैठाया जाता है वह एक भी किसान की गवाही नही लेता। संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध का उदाहरण लीजिये। इस सूबे मे कमीशन ने तेतीस व्यक्तियों की गवाहियाँ लीं। इनमे आधे के करीब सरकारी अफसर थे बाकी जमीदार और राज-काजी। इनमें दो एक बड़े बड़े जमीदार ऐसे भी थे जो बड़े बड़े फार्मों का प्रयोग करते थे लेकिन तेतीस मे असली किसान, छोटा किसान तथा शिकमी एक भी नहीं था। पञ्जाब मे एक भी छोटे जमीदार की खुद जमीन जोतने वाले एक भी काश्तकार की गवाही नहीं हुई। जो खुद खेती नही करते थे सिर्फ उन्हीसे पूछा गया कि खेती की तरक्की कैसे हो सकती है?

शाही कमीशन के सामने गवाही देने वाले गवांहों की सूची पर दृष्टि डालते ही यह सच्चाई घूर-घूर कर आपकी तरफ देखेगी। ३०-३१ मे गोलमेज कान्फ्रेंस हुई। इसमे हिन्दुस्तान की सरकार ने अपनी मर्जी से बेशुमार फिरको और जमातों के "डेलीगेट" बनाकर भेजे। लेकिन तीनों कान्फ्रेंसो में किसानों का एक भी डेलीगेट नहीं भेजा गया।

सन् १९२६ के बाद कई बरसों से किसानों की फसलें खराब हो रही थीं। लेकिन सरकार ने उनके लगान मे वाजिब माफी-मुलतवी नहीं की। सन् ३०-३१ मे जब संसार व्यापी आर्थिक संकट आया, नाज एक दम सस्ता हो गया और किसानों के सामने सर्वनाश का सवाल आ खड़ा हुआ तब भी सरकार सौंठ होकर बैठी रही। खरीफ की फसल निकल गई तब भी सरकार ने कुछ नहीं किया। कांग्रेस और कौंसिल द्वारा झकझोरे जाने पर उसने लगान में कुछ माफी-मुल्तवी की। लेकिन लगान और मालगुजारी की माफी-मुल्तवी के सवाल पर गौर करके राय देने के लिए जो चुनी हुई कमेटी मुकर्रर की गई उसमें किसानों का प्रतिनिधि एक भी नहीं रक्खा गया। मानो लगान की माफी-मुल्तवी के सवाल से किसानों का कोई सरोकार ही न था। नतीजा वही हुआ जो होना था। नाज सस्ता हो जाने की वजह से किसानों को साठ फीसदी नुकसान हुआ

का। सो भी कहने को। असल में नाज की सस्ती से इन लोगो को जो पच्चीस फीसदी का फायदा हुआ उसकी वजह से ये लोग सरकार और जमीदार तो सत्रह-अठारह फी सदी के फायदे में है। मरे तो केवल किसान ! ऐसे बुरे वक्त मे जब खुद सरकार यह जानती थी कि किसानो के लिए फसल हाल का लगान चुकाना भी मुश्किल है तब पिछले सालो के बकाया लगान की नालिशो से जो हजारो मौरूसी किसान वेदखल कर दिये गये उनकी किसी ने वात तक नहीं सुनी। माफी मुल्तवी के सवाल पर गौर करके राय देने वाली जिस कमेटी मे किसानो का एक भी प्रतिनिधि नही था उसने १३४० फसली में माफी मुल्तवी के वारे मे ऐसे किसान-विरोधी और स्वार्थपूर्ण प्रस्ताव किये कि स्वयं सरकार को अपनी रिपोर्ट मे उनकी नुक्ताचीनी करनी पड़ी और वह उन प्रस्तावो को स्वीकार न कर सकी।

देश के शासन मे किसानो की कोई आवाज न होने की वजह से ब्रिटिश शाहंशाह और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा भारत का शासन सीधे अपने हाथ मे लेने के लगभग पचास वरस तक यानी भारत मे ब्रिटिश शासन की स्थापना के लगभग डेढ़सौ वरस वाद तक खेती तरक्की की तरफ सरकार का ध्यान तक नही गया। शाही कृपि-कमीशन का कहना है कि सन् १६०१ के अकाल कमीशन और सन् सन १६०३ के सिंचाई कमीशन की सिफारिशो से भारत-सरकार का ध्यान खेती की तरक्की के उपाय खोजने और उनमे सुधार करने की तरफ गया। पहले-पहल सन् १६०३ में ४ जून को पूना मे

कृषि सम्बन्धी खोज करने के लिए एक संस्था कायम की गई वह भी हिन्दुस्तान की सरकार के रुपये से नहीं। शिकागो (अमेरिका) के एक दानी मिस्टर हैनरी फिलिप ने तीस हजार पौण्ड भारत-सरकार को दान मे दिये थे उसका ज्यादातर हिस्सा इस कृषि-विषयक खोज करने वाली संस्था की स्थापना में लगा दिया गया। जहाँ तक हिन्दुस्तान की सरकार से तअल्लुक है वहाँ तक उसने सन् १६०५ मे पहले-पहल हर सूबे मे खेती की तरक्की का महकमा खोलने के लिए बीस लाख सालाना देना मंजूर किया। और ये महकमे कायम कई बरस बाद तक हो पाये। संयुक्त-प्रान्त में १६१४ मे कायम हुआ। यानो ठीक डेढ़ सौ बरस तक भारत की ब्रिटिश सरकार ने खेती की, नब्बे फीसदी जनता के धन्धे की, तरक्की की कोई जरूरत ही नहीं समझी, और सन् १६२६ तक सैमहिगन बॉटम साहब के शब्दो मे हिन्दुस्तान की जरूरतो के लिए खेती विषयक खोज बिल्कुल नाकाफी थी वास्तव में वह १६४५ तक भी बहुत नाकाफी है।

खुद सरकारी गवाहो ने शाही कमीशन के सामने गवाही देते हुए यह मंजूर किया था कि छोटे किसानो की तरक्की के सवाल पर अभी तक गौर ही नहीं किया गया! और आज तक सरकार छोटे किसानों की तरक्की की कोई सुव्यवस्थित योजना नहीं बना पाई है। संयुक्त-प्रान्त की सरकार की रिपोर्ट मे खुलमखुला यह कहा गया कि सरकार की नीति बड़े-बड़े जमीदारों, पूँजीपति किसानो, फार्मवालों को मदद देने की रही। उसने बड़े-बड़े

फार्मवालो को ही फायदा पहुँचा। जब कि सैमहिगन वॉटम साहब ने कमीशन को यह बताया कि यह सूबा छोटे किसानो का सूबा है तब सूबे के कृषि-विभाग के अत्युच्च अधिकारी डाक्टर पार ने कमीशन के सामने यह मंजूर किया कि हमने छोटी जोतो को इकाई मान कर उनकी तरक्की के विशेष उपाय सोचना शुरू ही नही किया है। सरकारी रिपोर्ट के शब्दो मे खेती के महकमे को छोटे किसानो की यानी किसानो की तरक्की के सवाल पर गौर करने की फुरसत ही नही! डाक्टर पार ने कहा कि सूबे की सरकार खेती के महकमे को गौण मानती है।

जिस पंजाब सूबे मे खेती की तरक्की के लिये सबसे ज्यादा कोशिश की गई है उसकी बाबत् उसी सरकार ने एक विशेषज्ञ अफसर मिस्टर एफ-एल ब्राइन आई-सी-एस ने शाही कमीशन के सामने यह कहा था कि "खेती की तरक्की के काम के बहुत से पहलुओ की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं है। उन्होने कहा कि आजकल जैसी सरकार है उसमे हो ही क्या सकता है? छः साल तक मैने असाधारण कोशिश करके यह देखा, मैने सरकारी तौर पर, अर्धसरकारी तौर पर और निजी तौर पर सब तरह खत भेजे। सरकारी अफसरो और मिनिस्टरो से मिला, सदर दरवाजे से भी और चोर दरवाजे से भी, लेकिन अपने ज़िले के किसानो की तरक्की के लिए सरकारी मदद लेने मे मैं कामयाब न हो सका।" जब एक जिलाधीश का यह अनुभव है तब औरो का क्या कहना?

संयुक्तप्रान्त के महकमे माल के तत्कालीन सेक्रेटरी मिस्टर लेन ने शाही कृषि कमीशन के सामने गवाही देते हुए यह मंजूर किया कि मेरा महकमा यह महसूस करता है कि गाँवों की माली तरक्की से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। यह उसका काम नहीं है कि वह किसानों की तरक्की के लिए कोशिश करे ....कलक्टरों के पास भी इतना वक्त नहीं कि वे किसानों की भलाई की बात सोचें। किसानों से उनका सम्पर्क दिन पर दिन कम होता जाता है। अब रहे डिप्टी कलक्टर, सो उनके पास मुकदमों का काम ही इतना रहता है कि वे किसानों की भलाई के कामों में वक्त नहीं दे सकते।

खेती की तरक्की के उपायों की जाँच करने के लिए जो शाही कमीशन बैठाया गया था उसे यह अख्त्यार न था कि मौजूदा कानून मालगुजारी और कानून लगान के बारे में तथा आबपाशी की दर के बारे में कोई सिफारिश करे! मानो कानून लगान और मालगुजारी का तथा आबपाशी की दरों का किसानों की तरक्की के उपायों से कोई सरोकार ही नहीं है। संयुक्तप्रान्त के कृषि विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर क्लार्क साहब को शाही कमीशन के सामने यह मंजूर करना पड़ा कि उन्हें नहीं पता कि सूबे में किसानों की जोतों का औसत क्या है? एक कृषि-कालेज के एक प्रिन्सीपल ने मैकेंजिन थाटन साहब ने बतलाया कि मुझे यह नहीं मालूम कि मुझे कृषि-कालेज का प्रिन्सीपल किस लिए मुकर्रर किया गया है ' मैंने तो कभी आज तक भी खेती नहीं की '

गुलामी के कारण, शासन मे किसानो की कोई आवाज न होने के कारण, किसानो की भलाई के लिए कायम किये गये महकमे या तो उच्चाधिकारियो को बडी-बड़ी तनख्वाहे देने और मनमाने प्रयोग करने के साधन मात्र रह जाते है या उल्टे किसानो पर जुल्म करने के हथियार बन जाते है। कृषि-विभाग का वर्णन किया जा चुका है। अब सिंचाई के महकमे और सहयोग विभाग को ले लीजिये।

पक्के कुओ ने ही छोटे किसानों की सिंचाई की आवश्यकता पूरी हो सकती है। नहरे इतनी निकाली नही जा सकती जिससे सिंचाई की जरूरत पूरी हो सके और ट्यूब वैलो से उस वक्त तक कोई फायदा नही हो सकता जब तक कि कई फसलें न उगाई जायँ और ईख, आलू, तमाखू वगैरः कीमती फसले न बोई जायँ। लेकिन जिन पक्के कुओ से करोड़ो किसानों को फ़ायदा पहुँच सकता है उनकी मरम्मत सातसौ, छःसौ रुपये के हिसाब से होती है। शाही कृषि कमीशन के मेम्बर सर गङ्गाराम ने कहा था कि सिंचाई के मामले में जिस चाल से तरक्की हो रही है उससे बारह सौ बरस मे हम उतनी एकड़ो मे सिंचाई का इन्तिजाम कर सकेंगे जितनी मे यह इन्तिजाम लाजिमी है।

महकमे नहर की बाबत लोगो को बेहद शिकायते है। नहर की पटरियो पर होकर किसानो के बैल वगैरः नहीं निकलने दिये जाते जिससे उन्हे बहुत कष्ट होता है। नहरो के पानी देने का कोई वक्त मुकर्रर नही। किसानो को निश्चित रूप से यह भी नही बताया जाता कि पानी कब आवेगा? नहर के पानी

की उम्मेद पर किसान काफी खेत जोतकर वो देते है लेकिन अक्सर खेतो को पानी नहीं मिलता जिससे बाकी खेत बिल्कुल मारे जाते है। बेचारे किसानों को और नुकसानों के साथ साथ जुताई और बीज का नुकसान व्यर्थ उठाना पड़ता है। बरसात बन्द होने के बाद तुरन्त ही नहरे नहीं खोली जाती जिसमें जब कभी बरसात जल्दी बन्द हो जाती है तब फसल को भारी नुकसान पहुँचता है। नहर के बम्बे कभी ठीक तौर पर साफ नहीं किये जाते। उनकी सफाई का काम बड़े बड़े ठेकेदारों को दे दिया जाता है। ठेकेदार ठीक सफाई नहीं करते। बम्बो से अलग अलग जगह कितना पानी निकलता है इसकी ठीक रिपोर्ट नहीं होती। रिपोर्ट करने का काम पतरौलो के सुपुर्द है। वे मुहाने पर नाप कर यह अन्दाज लगा लेते है कि आगे कितना पानी निकलता होगा और यही अन्दाजिया रिपोर्ट भेज देते हैं। बेचारे किसान अफसरों को अर्जी पर अर्जी देते है कि पानी कम मिल रहा है, पतरौल की रिपोर्ट गलत है लेकिन उनकी अर्जियों की कौन सुनता है। पतरौल की रिपोर्ट वेद-वाक्य मान ली जाती है।

एक बम्बे के सुपुर्द जितना रकबा होता है वह उतने रकबे को पानी नहीं दे सकता। बँदोबस्त के वक्त अफसर बँदोबस्त नहर के महकमों के अफसरों से यह नहीं पूछते कि कौन कौन रकबा नहरी है? जिस रकबे को बँदोबस्त से पहली साल या कुछ साल पहिले नहर का पानी मिल जाता है उसे नहरी करार देकर उस पर लगान बढ़ा दिया जाता है। स्वभावतः

किसान इस रकवे के लिए पानी माँगते है। लेकिन महकमा नहर के अफसर उनके खेतो को नहरी रकबे मे नहीं शामिल करते। यानी आबपाशी लेने के लिए किसानो के खेत नहरी है, और पानी देने के लिए गैर नहरी।

जव पानी की जरूरत होती है तब नहरो से पानी नही दिया जाता और जब दिया जाता है तब भी काफी मिकदार मे नही दिया जाता। कुलावो का मुँह कम तथा बम्बो को गहरा करके पानी की मिकदार घटा दी जाती है। किस फसल मे और किस महीने मे कितना पानी मिलेगा इसका ठीक ठीक प्रोग्राम किसानो को अच्छी तरह नही बताया जाता।

जव नहर के पानी की जरूरत नही होती तब वह बिल्कुल बरबाद होता है अगर यही पानी बम्बों के जरिये गाँवों की पोखरो को दिया जाय तो बहुत फायदा हो। जहाँ पोखर नही है या ठीक जगह पर नही है वहाँ इस कामके लिए नए तालाब बनाए जा सकते है? लेकिन महकमे नहर मे किसानो की भलाई की परवा किसे है?

मॉटगोमरी पञ्जाब की ओमरा रियासत के कर्नल ई० एच० कोल ने कमीशन से शिकायत की थी कि पानी की सबसे ज्यादा बरबादी महकमा नहर करता है। इस महकमे के अफसर अगर किसानो की शिकायत न सुनें और वे अक्सर नहीं सुनते तो ब्रह्मा भी किसानो की मदद नही कर सकता। जिलाधीशों के पास शिकायत लेकर पहुंचने पर जवाब मिलता है कि यह मामला हमारे अख्त्यार से बाहर है। कोल साहब ने कहा

कि फाइनेंशियल कमिश्नर से उन्होंने रिपोर्ट की तो जवाब मिला कि हमने आपकी शिकायत नहर के चीफ इञ्जीनियर के पास भेजदी लेकिन वहाँ से कोई जवाब ही नहीं मिलता।

पन्द्रह बीस रुपये माहवार से भी कम तनुख्वाह पाने वाले पतरौलों और पटवारियों को रिपोर्टों पर किसानों के भाग्य का फैसला कर दिया जाता है। सब तरह से इन अहलकारों को रिश्वत लेने, जबरदस्ती रुपया ऐंठने तथा तरह तरह से किसानों को सताने का भारी लालच और पूरा मौका मिलता है।

आबपाशी की दर भी बहुत ज्यादा है। उससे सरकार मुनाफा उठाती है। आबपाशी की वसूलयाबी भी बड़ी सख्ती के साथ होती है। जब खुद सरकार अकाल की वजह से लगान माफ करती है तब भी अक्सर आबपाशी नहीं माफ होती। किसानों को शासन में और अधिकार मिलना तो दूर अभी तक गाँवों में नहरों की पंचायतें तक नहीं कायम हो सकीं।

सहयोग-विभाग भी बहुत से सूबों में एक विपत्ति ही साबित हुआ है। इस महकमे के जरिये किसानों को बिल्कुल गुलाम बना लिया जाता है। चुनावों में बैङ्क के मेम्बर किसानों को अपनी वोट बैङ्क के सेक्रेटरी के हुक्म के मुताबिक देनी होती है। किसानों से कर्ज का रुपया लेकर उसकी रसीदें न देने या कम

से ज्यादातर शिकायतो की जाँच करने पर लेखक ने उन्हें बिल्कुल सही पाया। संयुक्तप्रान्त की सरकार ने शाही कृषि-कमीशन के सामने जो रिपोर्ट पेश की उसके पैरा ३७१ मे लिखा है—"वदायूँ जिले की कुल डेढ़सौ सोसाइटियो मे तथा वनारस, सुल्तानपुर वगैरः की कई सोसाइटियों में बार-बार गडवड़ी और वेकायदगी पाई गई जिनसे मजबूर होकर सरकार को वे तोडनी पड़ी। कई मैनेजिङ्ग डाइरेक्टरो पर वेईमानी के लिए मुकदमे चलाये गये! एक कमेटी का कहना है कि सहयोग समितियो की जॉच के लिए मैकलेगन कमेटी ने जो कसौटियाँ कायम की है उन पर कसने पर संयुक्तप्रान्त की ज्यादातर सोसाइटियाॅ कोरी ढोंग साबित होगी। इस सूवे की बैङ्किङ्ग जॉच कमेटी का कहना है कि सूवे के सहयोग-विभाग ने न सिर्फ अपने काम मे कोई कहने योग्य कामयावी ही नहीं हासिल की बल्कि निश्चित नुकसान पहुंचाया है।

महकमे जङ्गलात की कहानी संयुक्तप्रान्त के इस महकमे के चीफ कमिश्नर मि० शैयर (Chauar) की जवानी सुनिये। शाही कृषि कमीशन के सामने गवाही देते हुए उन्होने कहा कि किसानो के खेतों, उनके जानवरो और खुद किसानो तथा उनके वाल-वच्चो को हिंसक तथा जङ्गली जानवरो से वचाने के लिए महकमा कुछ नहीं करता! और न वह किसानों को ही यह इजाजत देता है कि अपने खेतो, वाल-वच्चो, जानवरो और खुद उन्हे खाजाने वाले जङ्गली जानवरो को मारें। सवाल ३६८३२ के जवाव मे आप ने यह मंजूर किया कि हमारे कायदे व्यापा-

रिक दृष्टि से न्याययुक्त नहीं है, लेकिन शिकार के शौक़ीनों की ज़रूरत को पूरा करने के लिए हम न तो ख़ुद इन जङ्गली जानवरों को मारते हैं, न किसानों को ही उन्हें मारने की इजाज़त देते हैं।

किसानों की फ़सलों को जानवरों से जो नुक़सान पहुंचता है वह मामूली नहीं है। सैप हिगन बॉटम साहब का कहना है कि मैंने जङ्गली जानवरों द्वारा होने वाले नुक़सान की बाबत बहुत से सुयोग्य निरीक्षकों से बातचीत की है, वे इस नुक़सान को हिन्दुस्तान की कुल पैदावार के दसवें हिस्से से लेकर पाँचवें हिस्से तक कूतते हैं।

घी-दूध में मिलावट होने की वजह से और वानस्पतिक घी के प्रचार की वजह से घी-दूध का व्यापार नष्ट होता जा रहा है लेकिन मिलावट के विरुद्ध काफ़ी और कारगर क़ानून नहीं। एक मुसलमान जज ने उनकी अदालत में यह साबित हो जाने पर भी कि अभियुक्त ने घी में सूअर की चर्बी मिलाई थी उनको इसलिए बरी कर दिया कि क्योंकि यह साबित नहीं हो सका कि सूअर की चर्बी स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। गाय की चर्बी की मिलावट साबित होने पर भी यही हाल हुआ। पञ्जाब के कृषि-रसायनज्ञ डाक्टर पी० ई० लैन्डर ने साफ़ साफ़ यह कहा कि—हिन्दुस्थान में आज-कल कई किस्म के वानस्पतिक घी को सस्ता बनाने के लिए उसमें खनिज तेल अक्सर से मिलाया जाता है और इन खनिज तेलों का हिन्दुस्थान में खाना न बंद करने के कारण सरकार एक तरह से वानस्पतिक

तेलो मे इन खनिज तेलो की मिलावट को प्रोत्साहन दे रही है।

सरकार की रेलो की किराये की नीति भी किसानो के लिए घातक है। अलीगढ़ के कैवेन्टर ब्रदर्स ने शाही कमीशन के सामने कहा था कि "हर साल अच्छा दूध देने वाली गायो और भैसो की कमी वढ़ती जा रही है। कारण यह है कि अच्छे से अच्छा दूध देने वाली गाये और भैसे बम्बई और कलकत्ता ‌ो जाई जाती है। वहाँ उनके सूख जाने पर चारे की कमी ‌ी वजह से ग्वाले उन्हे कसाइयो के हाथो कटने के लिए वेच ‌ते है। रेल का भाड़ा ज्यादा होने की वजह से उन्हे वापस ‌हीं कर सकते। गायो-भैसो को माल-गाड़ी से लाने ले जाने ‌की वजह से भी इनके व्यापार को भारी अड़चन पड़ती है।

हिन्दुस्थान का पशु-धन बहुत अधिक है। वास्तव में पशु-धन मे हिन्दुस्थान ससार का सब से धनी देश है। १९३५ की गणना के अनुसार जिसमे वर्मा तथा भारतीय रियासतें भी शामिल है। भारत का कुल जीवित पशु-धन ३६ करोड़ था। इसमे १७ करोड़ के लगभग गौ धन था। डाक्टर एन राइट (Wright) के कथनानुसार हिन्दुस्थान की दूध की पैदावार आठ अरब रुपए साल की है। सिर्फ अमेरिका में हिन्दुस्थान से ज्यादा दूध पैदा होता है। ब्रिटेन से चौगुना, डेनमार्क से पॅचगुना और आस्ट्रेलिया से छः गुना दूध पैदा होता है। फिर भी जब कि ब्रिटेन मे फी व्यक्ति ३९ औंस दूध की खपत है तब भारत मे सिर्फ सात औंस की। यदि दूध की

पैदावार में बारह फीसदी भी उन्नति हो जाय तो एक अरब
साल की वृद्धि राष्ट्रीय आय में हो जायगी।

परन्तु पशुओं की उन्नति तो दूर उनकी चिकित्सा का भी
कोई कारगर प्रबन्ध नहीं है। किसानों के लाखों जानवर हर
साल तरह तरह की बीमारियों से मर जाते है। जितने जानवर
अकाल मृत्यु से समुचित चिकित्सा द्वारा बचाये जा सकते हैं
उनकी मौत से होने वाली हानि का हिसाब लगाया जाय तो
करोड़ों रुपए साल तक पहुँचेगा। संयुक्त प्रान्त में जानवरों की
बीमारी के मामले में तत्कालीन सरकारी सलाहकार कप्तान
हिकी (Hickey) साहब ने शाही कमीशन के सामने यह
मंजूर किया था कि "अगर जानवरों की बीमारी का इलाज
करने के लिए काफी इन्तिजाम हो तो कम से कम आधे जान-
वर हर साल मरने से बचाये जा सकते हैं! सूबे में कुल चार
सौ अट्ठाईस आदमी जानवरों के इलाज के लिए रक्खे जायँ तो
कुछ कम साठ लाख रुपए साल का नुकसान बचाने के लिए
सरकार की तरफ से क्या प्रबन्ध था वह भी कप्तान साहब
की जबानी सुनिये। "एक जिले में सिर्फ एक अस्पताल है।
उनमें भी जानवर भर्ती करके उनका इलाज करने का कोई

डाक्टर होता है। एक अस्पताल पाँच मील से ज्यादा दूर रहने वालो की बहुत ही कम मदद कर सकता है, लेकिन यहाँ अस्सी-अस्सी नब्बे-नब्बे मील लम्बे-चौड़े जिलों के लिए सिर्फ एक ही अस्पताल है। सूबे मे सफरी शफाखाने नही हैं। अगर जानवर यकायक बीमार पड़ जाय तो किसान डाक्टर को नही बुला सकता। जब तक डाक्टर पहुँचे तब तक जानवर मर जाता है ' बीमारी फैलने पर पटवारी डाक्टर को रिपोर्ट करता है कि फलाँ गाँव मे जानवरो की बीमारी फैली है। और पटवारियो की बाबत यह आम शिकायत है कि वे बीमारी की रिपोर्ट करने मे देरी करते है, लापरवाही से काम लेते है। और डाक्टर के पास पटवारी की रिपोर्ट मिलने पर डाक्टर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन से इजाजत माँगता है। इजाजत मिलने पर वह गाँव मे जाकर पता लगाता है कि क्या बीमारी है। इसके बाद वह गाँव वालो को इस बात के लिए राजी करता है कि वे जानवरो के टीका लगवावे। इसमे कामयाबी मिलने वह सरकार को टीके के लिए सीरम भेजने के लिए तार देता है। इस नौकरशाही विसविस मे कम से कम एक महीना लग जाता है तब तक मर्ज मरीजो को लेकर चलता बनता है।

कमान हिकी साहब से जानवरो के इलाज का यह हाल सुन कर कमीशन के एक मेम्बर कार्ल्या साहब ने पूछा कि क्या ऐसी हालत में किसान इस महकमे से नफरत नहीं करते। इसके जवाब मे कमान साहब को मंजूर करना पड़ा कि देरी की वजह

से किसान इस महकमे से उदासीन हैं। लेकिन बात सिर्फ देरी तक ही नहीं है। नौकरशाही घिसघिस बहुत दूर तक फैली हुई है। एक जिले में बीमारी फैलने पर जब डाक्टर ने सीरम के लिये तार दिया तो पता चला सूबे की सरकार के स्टाक में सीरम है ही नहीं। सीरम खरीदने के लिए रुपया मंजूर कराने में कई महीने लग गये।

अगर कई गाँवों में बीमारी एक साथ फैल जाय तो बेचारा डाक्टर कहाँ-कहाँ जाय। हजारों गाँवों के लिए एक डाक्टर कर ही क्या सकता है?

जानवरों के इलाज में देशी दवाओं से काम नहीं लिया जाता। विलायती दवाएँ इस्तैमाल की जाती हैं जो बहुत महँगी होती हैं। बहुत से मामलों में विलायती चिकित्सा की तालीम पाये हुए ये डाक्टर देशी चिकित्सकों के मुकाबिले में अपनी हँसी कराते हैं। शाही कृषि कमीशन के एक मेम्बर राजा रामपालसिंह ने इस विषय में एक मजेदार किस्सा सुनाया। एक मरतबा जब उनकी भैंस बीमार पड़ी तो उन्होंने उसे सरकारी डाक्टर को दिखाया। डाक्टर साहब ने भैंस के इलाज के लिए जो नुसखा लिखा उसकी कीमत बत्तीस रुपये थी और राजा साहब के कस्बे में मिल भी नहीं सकती थी, लखनऊ से ही आ सकती थी। लाचार होकर राजा साहब ने जब तक विलायती दवा आवे तब तक एक फकीर से अपनी भैंस का इलाज कराया। उसने कुछ पत्तियाँ खिला कर भैंस को चंगा कर दिया। डाक्टर साहब की बत्तीस रुपये की न मिलने वाली दवा की जरूरत ही न पड़ी।

स्वयं कप्तान हिकी साहब ने यह माना कि घोड़ों के इलाज के बारे मे देशी शालहोत्री विलायती तालीम पाये हुए डाक्टरो से कहीं ज्यादा हुशियार होते है। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार ने आज तक देशी चिकित्सा पद्धति, देशी चिकित्सक और देशी औषधियो का पूर्ण बायकाट किया है?

सच बात यह है कि अभी तक करोड़ो किसानो को यही पता नही कि जानवरों के इलाज के लिए भी कोई महकमा है। शाही कृषि-कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट मे यह लिखा है कि 'अभी सरकारी पशु-फार्मो ने युवा सॉड़ो की जरूरत को रफा करने मे बहुत ही कम कामयावी हासिल कर पाई है।' इसी कमीशन के चेयरमैन दस बरस बाद जब लार्ड लिलिथगो और हिन्दुस्तान के वायसराय होकर यहॉ आये तब उन्होने सॉड़ो के प्रबन्ध का विशेप उद्योग किया। लेकिन आज १९४५ मे भी हिन्दुस्तान मे अच्छी नस्ल के सॉड़ो की समस्या उतनी भी हल नहीं हुई हैं जितनी इङ्गलैण्ड मे जनता के राज और आर्थिक लोकतन्त्र तथा आर्थिक स्वाधीनता की।

सरकारी अकाल कमीशन की राय है कि किसानों को अकाल से बचाने का एक मात्र उपाय घरेलू धन्धे है। घरेलू तथा सहकारी धन्धो के बिना किसानों की आर्थिक स्वयं पर्याप्तता की समस्या कदापि हल नहीं हो सकती। संसार भर मे सर्वत्र किसान खेती के अलावा दूसरे धन्धो का सहारा लेते है। यूरूप के बहुत से देशों मे अब तक वहॉ के किसान उनकी औरत चरखा चलाती है और कपड़े तथा ऊनी मोजे वगैरा बुनती हैं

लाख बनाती हैं, जरी वग़ैरः का काम करती हैं। चटाई, टोकरी, बर्तन वग़ैरः बनाती हैं। लकड़ी की और चमड़े की चीज़ें भी तैयार करती हैं। जिन मुल्कों में बड़े पैमाने के कारख़ानों में नये माल बनने लगे हैं, उन मुल्कों में भी छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धन्धे अभी तक नष्ट नहीं हुए।

मिस्टर मालकम ल्याल डार्लिङ्ग आई० सी० एस० की राय है कि किसानों के तरकश में जब तक खेती के अलावा दूसरा तीर न हो तब तक पञ्जाब के जमींदार-किसान कर्ज की फाँसी से बरी नहीं हो सकते और यह याद रहे कि पञ्जाब के जमींदार-किसान हिन्दुस्तान के सबसे ज्यादा आसूदा किसान माने जाते हैं। डार्लिङ्ग साहब का कहना है कि बिला शक दूसरे मुल्कों की तरह हिन्दुस्तान में भी छोटी जोत वाले किसानों का गुजारा महज खेती से नहीं हो सकता। अगर किसानों के तरकश में खेती के अलावा दूसरा तीर नहीं हुआ तो वे बोहरों के फन्दे में फँसे बिना नहीं रह सकते।

पुराने घरेलू धन्धों की तरक्की करने और नए घरेलू धन्धे चलाने की जरूरत हिन्दुस्तान के सभी नामी अर्थशास्त्राचार्य एकमत से स्वीकार करते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार ने इन घरेलू धन्धों को पुनरुज्जीवित करने तथा नए धन्धे चलाने के

से मदद देती है। दूसरे मुल्को के माल के बेजाँ मुकाविले से उन्हे बचाती हैं। लेकिन हिन्दुस्तान मे यहाँ की सरकार हिन्दुस्तानी धन्धो को सजा देती है। जब कि कनाडा तमाम विदेशी माल पर टैक्स लगाता है तब हिन्दुस्थान मे बनने वाले रेशमी कपड़े पर अब तक चुङ्गी लगती थी। पूर्वी कनाडा मे वहाँ की म्यूनि-स्पैलिटियो ने घरेलू धन्धो को तरह-तरह की सहूलियते दे रक्खी है लेकिन हिन्दुस्तान की सरकारे हिन्दुस्तान के रोजगारो को मदद देने मे वड़ी कंजूसी से काम लेती है।"

यह कौन नहीं जानता कि हिन्दुस्तान की रेलें हिन्दुस्तान मे विलायती माल वेचने और उस माल के मुकाबिले मे हिन्दुस्तान के घरेलू धन्धों को बरबाद करने मे ज़बरदस्त साधन बनी है। १६१६ की इण्डिया ईअरबुक मे लिखा है कि "यूरुप की मौजूदा तरक्की ने हिन्दुस्तान की कुछ बहुत भीतरी जगहो को छोड़ कर बाकी जगहो में लोहे, स्टील, शीशे वग़ैरः के उन धन्धो को जो किसी समय खूब चमक रहे थे बिल्कुल बरबाद कर दिया है। सर विश्वेश्वरैयर का कहना है कि माल पर रेल का क़िराया मुक़र्रिर करने की नीति मे ऐसा हेर-फेर होना चाहिये कि जिससे यह न मालूम हो कि रेलवे महज हिन्दुस्तान के माल को वाहर भेजने मे उस व्यापार को मदद देने के लिए बनाई गई है, जो विलायती लोगो के हाथ मे है।

जापान ने उद्योग-धन्धों मे जो चमत्कारिक सफलता कर दिखाई है उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ के व्यापारियो और सरकार ने एक दूसरे से मिल कर काम किया। वहाँ तमाम

प्रारंभिक रोजगार वास्तव मे सरकार ने ही शुरू किये थे और शुरू के कई साल तक उनका नुक़सान भी सरकार ने ही बरदाश्त किया। साथ ही विदेशों के माल पर टैक्स लगा कर इन धन्धो की रक्षा भी की गई। इङ्गलैण्ड मे उन्नति (Development) के लिए जो कमीशन बिठाया गया था उसने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि किसानो के घरेलू धन्धो को चेताने में जर्मनी ने जो इतनी ज्यादा तरक्की कर दिखाई इसकी खास वजह यही थी कि वहाँ खास तौर पर इन्हीं धन्धों की तरक्की और सहायता के लिये एक सरकारी महकमा मुकर्रर किया गया और इस महकमे ने बड़ी मेहनत से लगातार ऐसा इन्तिजाम किया कि जिनसे लोगो को अपने धन्धो के बारे मे सब तरह की शिक्षा, सूचनाएँ और सलाह मिलती रही

१६१६ मे हिन्दुस्तान के व्यवसायो की तरक्की के उपाय सोचने के लिए एक शाही कमीशन बिठाया गया था। इस कमीशन ने घरेलू धन्धो की तरक्की के लिए कई शिफारिशें की लेकिन आज तीस बरस होने आये इनमें से कितनी शिफारिशों पर अमल किया गया? असल में घरेलू धन्धो की तरक्की के लिए एक सुव्यवस्थित योजना की और उस योजना को पूरा करने के लिए हर सूबे में पाँच साल तक कई-कई करोड़ रुपये साल खर्च करने की जरूरत है। लेकिन अभी तक रुपया तो दूर हिन्दुस्तान की सरकार और सूबे की सरकारें किसानों के घरेलू धन्धों की तरक्की के लिये कोई अच्छी योजना तक नहीं बना पाई हैं।

फलों की खेती, व्यापारिक बागवानी और तरकारी की खेती के लिए हिन्दुस्तान मे तरक्की की बहुत गुञ्जाइश है। इस विषय के विशेषज्ञों का कहना है कि किसानो के पैरो के नीचे सोने की खान है लेकिन दुर्भाग्य से यहाँ की सरकार ने देश के किसानो को अभी तक यही नही बताया कि वे इस मामले में क्या करे ?

जङ्गलो से खेती को बहुत फायदा पहुँचता है। उनसे किसानो को मकान तथा खेती के औज़ार वगैरः बनाने को लकड़ी मिलती है और जलाने को ईंधन, जिससे गोबर की खाद बचती है। पत्तियों को खाद मिलती है और जानवरों को चारा। साथ ही ये जङ्गलात बरसात के पानी को रोकते है, नमी रखते है और जमीन को कटने से बचाते है। इन सब दृष्टियो से चाहिए तो यह था कि जंगल रखाये और जमाये जाते लेकिन हुआ यह कि भारत-सरकार के शासन के पिछले दो सौ बरस में यहाँ के जंगल बिल्कुल साफ हो गये। मिस्टर ट्राउन्स्कोल्ड (Tronscold) का कहना है कि "जिन जंगलो मे बादशाह बाबर बारह सिहो की शिकार खेला करता था वहाँ अब बड़े-बड़े खारो के सिवा और कुछ नहीं है।" मिस्टर बैनकिन (Benakin) आई० सी० एस० का कहना है कि "पहले हिन्दुस्तान का ज्यादातर हिस्सा जंगलात से हरा-भरा रहता था लेकिन जो जिले पहले जंगलो से सुरक्षित थे उनमें अब पत्ता तक नहीं दिखाई देता।" हिन्दुस्तान के एक भूतपूर्व लैफ्टीनैन्ट गवर्नर आर्थर फैल्प (Arthur phalp) साहब का कहना है कि

"जो ज़मीनें आजकल बिना जंगल के पड़ी हुई हैं उनमें जंगल न जमा कर हिन्दुस्तान की सरकार ने जो अपराध किया है उसके लिए मैं कभी क्षमा नहीं कर सकता।"

अकेले संयुक्त प्रान्त में, खासकर जमुना और चम्बल के खार पाँच लाख एकड़ से लेकर दस लाख एकड़ तक है। इनकी वजह से हर साल कई सौ बीघा खेती मारी जाती है। इनकी ऊसर जमीन को चारे और ईंधन का भण्डार बनाया जा सकता है। उसमें घास उगाई जा सकती है। बबूल बोये जा सकते हैं। बबूल ईंधन और लकड़ी के काम में तो आता ही है उसकी छाल भी काम में आ सकती है।

जङ्गलात को खेती का सखा कहा जाता है। दूसरे मुल्कों की सरकारों ने अपने यहाँ के किसानों के लिए ईंधन, लकड़ी चारे वगैरः का इन्तिज़ाम करने के उद्देश से काफी जङ्गल लगाये हैं। अगर कोई फ्रांस, आस्ट्रिया, जर्मनी, टाइरोल और स्विटज़रलैंड वगैरः में सैर करे तो हमें हर जगह दरख्तों की कतारें या बड़े-बड़े जङ्गल दिखाई देंगे। इन जङ्गलों से आस पास के सब गाँवों के लोग ईंधन लकड़ी ले सकते हैं। इन मुल्कों की सरकारों ने इस बात का काफी ख्याल रक्खा कि मुल्क के जङ्गलात बरबाद न होने पावें। जहाँ जङ्गल मिट गये वहाँ जङ्गल जमा कर वहाँ की सरकारों ने चारे का सवाल हल कर दिया और हर ज़िले में लकड़ी ईंधन का काफी इन्तिज़ाम हो गया।

सुखी भारत (Happy India) मे लेखक आरनोल्ड लप्टन साहब ने लिखा है कि "हिन्दुस्तान मे कोयले और लकड़ी दोनो की बहुतायत है। सिर्फ लोगों की बेहद गरीबी और सरकार की लापरवाही की वजह से किसानो की झोपड़ियो में ईंधन कोयले और लकड़ी की कमी है।

ईंधन के सवाल को हल करना मुश्किल नही है। जिन गॉवो मे सिचाई का इन्तिजाम है उनमे दो साल के अन्दर इतना जङ्गल लगाया जा सकता है जिससे उपलो से ज्यादा लकड़ियाँ मिल सके। तार वग़ैरः लगाने का खर्च शामिल करके जङ्गल लगाने का खर्च सिर्फ अस्सी रुपया एकड़ पड़ता है। इसमे काफी किफ़ायत हो सकती है। इतने थोड़े रुपए में तीन-चार साल मे खासा अच्छा चरागाह तैयार हो जाता है और पेड़ सात फीट के हो जाते है। लेकिन सरकार ने न सिर्फ नये जङ्गल जमाने का यह किसान-हितकर काम अभी तक पूरा किया है बल्कि उसके जङ्गलात महकमे के कायदे ऐसे है कि उनमें भारी रद्दोबदल किये बिना जो जङ्गल हैं उनसे भी किसानो को पूरा-पूरा फायदा नही पहुंच पाता ?

महकमा जङ्गलात जितना अपने फायदे की तरफ देखता है उतना किसानो के हितो की तरफ नही। फल स्वरूप उसके और अड़ोस-पड़ोस के खेत वाले किसानो मे अक्सर मुठभेड़ हुआ करती है। महकमा जङ्गलात की उस पैदावार को भी व्यापारियो के हाथ बेचने से नही हिचकिचाता जो किसानो के

लिए जरूरी है। व्यापारी लोग इस पैदावार को खरीद कर विलायत भेज देते हैं।

इस महकमे के कायदे इतने सख्त हैं कि जङ्गलात के किनारे पर बसे हुए गाँवों के किसानो की जान मुसीबत में रहती है महकमे के अहलकारों द्वारा होने वाली तङ्गी और परेशानी को बरदाश्त करना मुश्किल है। संयुक्तप्रान्त के जंगलात के चीफ कमिश्नर ने शाही कृषि-कमीशन के सामने यह मंजूर किया था कि कायदों की दुरुस्ती के वक्त ऐसी कोई कमेटी या दूसरी किस्म का जरिया नहीं है जिससे इन कायदों के बारे में किसानो से सलाह ली जा-सके। ये कायदे कलक्टर, कमिश्नरों की मंजूरी से जरूर बनते हैं लेकिन कलक्टर-कमिश्नर किसानो की क्या चलाई किसी भी ग़ैर-सरकारी व्यक्ति से सलाह लेना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। इन चीफ कमिश्नर साहब ने यह भी कहा कि "घास, लकड़ी, ईंधन वगैरः किसान की जरूरत की चीजों पर रेल का किराया इतना ज्यादा होता है कि जिससे वे किसानों के पास मुनासिब दामों पर नहीं भेजी जा सकतीं। रेल किराये की वजह से ही गोरखपुर के जंगलों में लकड़ी पड़ी सड़ा करती है जब कि सूबे के हजारों गाँवों में लोग उसके लिए तरसते हैं। घास पर रेल इतना भाड़ा लेती है कि उसके बन्डल बना देने पर भी वह पचास मील से ज्यादा दूरी पर नहीं भेजी जा सकती।

श्रीयुत एस० केशव अय्यङ्गर ने अपनी (Studies in Indian Rural Economics) नामक पुस्तक के दूसरे अध्याय

मे लिखा है कि:—"हमारे देश मे जंगलात के धन्धो की उन्नति अभी शिशु अवस्था मे भी नहीं पहुँच पाई हैं। अभी तो महज़ अँधेरे मे प्रयोग हो रहा है। जंगलात मे व्यवसायो का असीम क्षेत्र है। उनकी पैदावार से तरह तरह के रंग बनाए जा सकते है, काग़ज और दियासलाई का रोजगार चल सकता है, पैसिलें बनाई जा सकती है। जंगलात से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी समस्याओ की तरफ अभी तक सरकार का ध्यान भी नही गया? विदेशो मे जंगलात की शिक्षा पाये हुए लोग हिन्दुस्थानी जंगलो की समस्याओ को हल करने मे दक्ष नही होते। इन शिक्षित विशेषज्ञो से तो पेड़-पौधो की जरूरतो की बावत हमारे देश में अनपढ़ किसान अधिक जानते है!"

सरकार की तरफ से अभी तक इस बात का कोई कारगर प्रवन्ध नही हो पाया है कि किसानो को उनकी पैदावार की पूरी कीमत मिले। जिन किसानो के कर्जे वगैरः मे खड़े खेत विक जाते है या खलिहान मे ही कुड़क हो जाता है उनका तो कहना ही क्या है लेकिन जो सौभाग्यशाली किसान इन मुसीवतो से बच जाते है उनको भी अपने नाज की ठीक-ठीक कीमत नहीं मिलती। उनके पास वाजार के भाव की ठीक-ठीक इत्तिला पहुंचने का कोई माकूल इन्तिजाम नहीं है। न उनके लिये शहर मे अपना माल लाने का ही ठीक-ठीक इन्तिजाम है। शाही कृषि कमीशन ने गाँवो के लिए सड़को का इन्तिजाम करने पर वहुत जोर दिया था लेकिन आज लगभग वीस वरस वाद तक

भी इस दिशा में अभी हुआ कुछ नहीं। सिर्फ पुनस्संगठन की लम्बी-चौड़ी योजनाओं के सब्ज-बाग दिखाये जा रहे हैं।

रेल या जहाजों के किराये, सरकार की मुद्रा और सिक्के (करेंसी) की नीति इत्यादि भी किसानों के हितों की दृष्टि से निर्धारित नहीं होतीं अनेक बार उनसे किसानों को भारी हानि उठानी पड़ती है। सैमहिगिन बॉटम साहब ने शाही कमीशन से शिकायत की कि खेती की पैदावार भेजने के लिए रेल के डब्बे स्टेशन वालों को रिश्वत देने पर ही मिलते हैं। इससे पैदावार भेजने का खर्चा बहुत बढ़ जाता है। तथा उसे भेजने में बड़ी दिक्कत होती है। रेलों में माल की खूब चोरी होती है और रेलवे नुकसान का हर्जाना नहीं देती। घी, फल वगैरः की टोक-नियों को जान बूझ कर ऐसी बुरी तरह फेंका, पटका जाता है कि जिससे वे टूट कर खुल जावें और उनमें से जो कुछ निकले उसे हथिया लिया जाय। मामूली तौर पर माल काफी अच्छी तरह बाँधा और रक्खा जाता है फिर भी उसकी यह दशा होती है। किसान अक्सर साँड़ मँगाना चाहते हैं लेकिन रेल और जहाज के भाड़े की वजह से नहीं मँगाते। इससे जानवरों की नस्ल के सुधार में बहुत रुकावट पड़ती है। स्टेशनों पर माल रखने का भी

के भाड़े की दरें ऐसी विचित्र हैं कि देश के अन्दर एक शहर से दूसरे कम फासले के शहर को माल भेजने में उससे ज्यादा किराया देना पड़ता है जितना कहीं ज्यादा दूर के फासले वाले बन्दरगाह को भेजने से देना पड़ता है। दूध वगैरः पर तो रेल-भाड़ा ऐसा है कि उनका व्यापार चल ही नहीं सकता। आगरा से लुधियाना खल भेजिए तो आठ आने मन किराया लगता है, लेकिन कालें कोसों दूर बम्बई भेजिए तो सिर्फ नौ आने मन। फिर ई० आई० आर० जिस चीज को दो सौ मील ले जाने का किराया सात आने मन लेती है, आर० के० आर० उसी चीज का उतनी दूर का किराया एक रुपए सात आने मन लेती है? आगरा से रोहतक सिर्फ डेढ़ सौ मील है। वहाँ से रेल से दूध की गायें मँगाई गईं तो आठ दिन लग लए! फलस्वरूप आधी गायें सूख गईं!

बाहर से आने वाले और बाहर जाने वाले माल पर ली-जाने वाली चुङ्गी और जहाजों के भाड़े का खेती की उन्नति पर बहुत असर पड़ता है क्योंकि इनका खर्च किसानों की पैदावार की कीमत को घटाता बढ़ाता है। ये कर हिन्दुस्थान के किसानों की भलाई-बुराई का ख्याल करके लगाए जाने चाहिए न कि किसी दूसरे मुल्क के हितों का ख्याल करके।

किसानों की पैदावार को कूतने की सरकारी प्रणाली बहुत ही दोष-पूर्ण है। यह काम पटवारियों के सुपुर्द है। इन पटवा-रियों को न तो ऐसी कोई गरज ही है, न उनके पास इतना समय है कि वे इस काम को ठीक तरह से करें क्योंकि इस काम

के लिए उन्हें अलग कोई भत्ता नहीं दिया जाता। फलतः पटवारियों के दिए हुए आँकड़े विश्वास-पात्र नहीं हो सकते। पञ्जाब सरकार के फाइनैंशियल कमिश्नर मिस्टर सी० एम० किङ्ग आई० सी० एस० का कहना है:—"जब बँदोबस्त को छोड़ कर बाकी मामलों में सरकारी अङ्क विश्वास योग्य नहीं होते तब बँदोबस्त के अङ्कों पर भी विश्वास किया जाना चाहिये या नहीं इस बारे में भी मुझे सन्देह है। सब मामला महकमा माल के अफसरों पर छोड़ दिया जाता है।" इन बातों के बावजूद भी नहर के पानी के बारे में तहसीलों की और [illegible] तथा [illegible] की पैदावार वगैरह के बारे में पटवारियों की रिपोर्ट [illegible] [illegible]

माली हालत बहुत कुछ सुधर सकती है। संयुक्त प्रान्त के स्वास्थ्य-विभाग के एक भूतपूर्व सञ्चालक मिस्टर डन ने 'बीमारियो की रोक का आर्थिक मूल्य' (The economic value of the Prevention of desease) शीर्षक लेख मे इस बात को अच्छी तरह प्रतिपादित किया है। हिन्दुस्तान के इंडस्ट्रियल कमीशन का कहना है कि "यह सभी मानते है कि कोई भी देश जितनी तन्दुरुस्ती खरीदना चाहे खरीद सकता है। उसी कमीशन का यह भी कहना है कि तन्दुरुस्ती खरीदने मे जो बड़ी रकमे खर्च होगी वे अन्त मे मुनाफा देगी।" संयुक्त प्रान्त के स्वास्थ्य-विभाग के उपर्युक्त एक भूतपूर्व डाइरैक्टर डन साहब का कहना है कि "अगर हिन्दुस्तान मे तन्दुरुस्ती के नियमो का उसी हद तक पालन किया जाय जिस हद तक इङ्गलैण्ड मे किया जाता है और यहाॅ भी सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए उतना ही खर्च किया जाय जितना वहाॅ किया जाता है तो हिन्दुस्तान मे बीमारियो से मरने वालों की तादाद इङ्गलैंड से ज्यादा नही हो सकती। श्रीमती वीरा ऐन्स्टी का कहना है कि "हैजा, प्लेग, चेचक, पेचिश, अतिसार ये सब ऐसी बीमारियाॅ है जो मिटाई जा सकती है। पश्चिमी देशों मे मिटाई जा चुकी है। एफ० एल० ब्राइफ साहब का कहना है कि सङ्गठन और कड़ी मेहनत से प्लेग फौरन काबू में आ जाती है, अगर माकूल इन्तिजाम किया जाय तो कामयाबी निश्चित है। आर्नोल्ड लप्टन साहब का कहना है कि एक ॲंग्रेज इञ्जीनियर ने जो हिन्दुस्तान मे एक बड़े सूबे का इञ्चार्ज था, मुझसे यह कहा था, मै जब और जिस जिले में चाहूं तब वहाॅ के निवासियो

के पीने के लिये साफ़ पानी का इन्तिज़ाम करके हैजे को भगा सकता हूं। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार इस काम में तय शुदा रुपये से ज्यादा खर्च ही नहीं करने देती। श्रीमती वीरा एन्स्टी का कहना है कि दूसरे किसी भी किस्म के व्यापारिक, औद्योगिक और राज सम्बन्धी सुधारों से जितना आर्थिक लाभ होगा उससे कहीं अधिक आर्थिक लाभ इन दूर हो सकने वाली बीमारियों को दूर करने से होगा। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार और सूबे की सरकारों ने इन बीमारियों को घटाने-मिटाने के लिए जितना प्रयत्न करना चाहिये उसका दशांश भी नहीं किया। आर्नोल्डलण्टन साहब ने लिखा है कि—हिन्दुस्तान के मैडीकल अफसर बहुत दिनों से यह जानते हैं कि टीके से चेचक नहीं मिट सकती। लेकिन क्योंकि टीका लगाने में कम खर्च पड़ता है इसलिए वे टीका लगाकर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं और चले जाते हैं। चेचक का टीका लगाने का खर्च फी कामयाब टीका सिर्फ छः आना है। इन्हीं आरनोल्ड लन्टन साहब का कहना है कि "अगर मलेरिया मार भगाया जाय तो हिन्दुस्तान बहुत ही सुन्दर देश हो जाय। मलेरिया के फैलने में रेलें और नहरें बहुत बड़े कारण हैं। इनकी वजह से जो पानी भर जाता है उसे नालियाँ बनाकर निकाल देने का इन्तिज़ाम होना चाहिये

हुक्काम पब्लिक के स्वास्थ्य के सवाल पर समुचित ध्यान दे। अगर वे दूसरे फिजूल के मामलो में अपनी शक्ति बरबाद करने के बदले इन सवालो मे दिमाग़ लगावें जिनका लोगो के स्वास्थ्य और उनकी भलाई से सम्बन्ध है तो हिन्दुस्तान स्वास्थ्य-निकेतन बन सकता है।" Happy India P. 129. उन्होने आगे कहा है "जिन लोगो के हाथो मे इस समय शासन को बागडोर है उनको अपने हुशियार इञ्जीनियरो को हुक्म देने भर की देर है, हुक्म देते ही मौत, बीमारी और मुसीबत ये सब काफूर हो सकते है। अगर ब्रिटिश सरकार लोगो की जान बचाने के लिए रुपये का इन्तिज़ाम नही कर सकती तो बहतर है कि वह इस्तैफा देकर चली जाय।" पृष्ठ १३३।

लेकिन हिन्दुस्तान मे तो ऐसा मालूम होता है कि यहाँ की सरकार राज से इस्तैफा देने के बदले लोगो की जान बचाने के काम से इस्तैफा देना ज्यादा पसन्द करती है। संयुक्त प्रान्त के स्वास्थ्य-विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर डन साहब ने कहा था कि इस सूबे के लिए तीन लाख बीस हजार पौण्ड कुनैन चाहिये लेकिन सन् १६२१ में हिन्दुस्तान की सरकार के पास हिन्दुस्तान भर के लिए सिर्फ इसकी आधी कुनैन थी। संयुक्त प्रान्त मे डन साहब के कथनानुसार सिर्फ एक फी सदी आदमी को कुनैन मिल पाती है। उनका कहना था कि मलेरिया को कम करने के लिए सरकार बहुत कुछ कर सकती है लेकिन बहुत समय तक मलेरिया विरोधी क्रियाओ का खर्च सरकार को गाँवो मे कुछ नही करने देगा।

संयुक्त-प्रान्त के पूर्वी जिलों में हुकवार्म (Hookworm) कृमि-रोग नाम की बीमारी बहुत ज्यादा होती है। इन जिलों के छियासी फीसदी किसान इस बीमारी से कष्ट पाते हैं—वे पीले पड़ जाते हैं, उनके शरीर में खून बिल्कुल नहीं रह जाता। वे बहुत कमजोर हो जाते हैं। यह बीमारी गरीबी की वजह से होती है। बेचारे किसानों के पास इतने पैसे नहीं कि जूते खरीदें। वे नंगे पैरों रहते हैं और इस बीमारी के कीटाणु मल से निकलते हैं और पैरों में होकर शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इन साहब की राय है कि गाँवों से इस बीमारी को दूर करना मुमकिन नहीं है, पेट की सब बीमारियों का कारण साफ पानी का न मिलना है। लेकिन सरकार बीमारियों को दूर करने के लिए साफ पानी का इन्तिज़ाम खर्च के नाम पर नहीं करती। यद्यपि इन साहब के कथनानुसार पब्लिक की तन्दुरुस्ती के कामों के लिये खर्च होने में उन्हें कौंसिल हमेशा मदद देती है। जब इंगलैण्ड की सरकार पब्लिक की तन्दुरुस्ती के लिए हर साल छियासी करोड़ अस्सी लाख रुपया खर्च करती थी तब उतनी ही आबादी वाले संयुक्त-प्रान्त में उन्हीं दिनों में करीब सिर्फ पन्द्रह लाख मात्र खर्च किया जाता है।

शाही कृषि-कमीशन का कहना है कि गाँवों में सफाई का कुछ इन्तिज़ाम ही नहीं है। जबकि गाँव वालों को और किसी मामले में सरकार की मदद की इतनी ज़रूरत नहीं है जितनी दवाओं और इलाज के मामले में।

ग्राम-पञ्चायतें जो कभी भारत के गाँवों का गौरव और जीवन

थी, आज नष्टप्राय हो गई है। पञ्चायतो की आज्ञा मानने की आदत जिनकी रग-रग में घुसी हुई थी, जो पंच परमेश्वर कहने और मानने के हजारो वरस से आदी थे आज उनके यहाँ पंचायते नहीं चल पाती। नई सरकारी पञ्चायतें संयुक्तप्रान्त मे ही बिल्कुल वेकार साबित होरही हैं।

किसानो की रक्षा के लिए कानून या अदालत वगैरः जो कुछ है वे भो उनको रक्षा नहीं कर पाते। मौजूदा शासन-प्रणाली मे ये सब काम अदालतो के जरिए होते है और अदालतों में इतना खर्च होता है, उनमे इतनी देर लगती है कि गरीब किसान उनकी मदद नहीं ले सकते। संयुक्तप्रान्त की सरकार ने शाही कमीशन के सामने जो रिपोर्ट पेश की उसमे यह लिखा है कि:—यूजर्स लोन्स एक्ट से किसानो को बहुत कम फायदा पहुंचा है क्योंकि बेचारे किसानो के लिए अदालत की मशीन को घुमाना आसान काम नहीं है।

और तो और रक्षक भी भक्षक बने हुए है। सरकार की तरफ से जो अहलकार किसानो की सेवा के लिए रक्खे जाते हैं वे ही उन्हे तरह-तरह से सताते है। मिस्टर एस० एन० ए० जाफरी ने अपनी किताब मे लिखा है कि, "यह ख्याल किया जाता है कि बहुत कुछ मुकदमेवाजी के लिए खासतौर पर पटवारी जिम्मेदार हैं। वे किसानों के आर्थिक जीवन को घुन की तरह खाये जा रहे है। पटवारी रिश्वत लेकर किसानों के कागजात मे गड़बड़ी कर देते हैं। माल की अदालतों मे इस गड़बड़ी की वजह से, हजारों मुकदमे चलते हैं। खेत जोतता है जमी-

दार लेकिन पटवारी के कागजात में नाम लिखा होता है बेचारे किसान का। सैमहिगिन बॉटम साहब ने तो यहाँ तक कहा है कि छोटे किसानों के सवाल पर सोचने के वक्त आपको मालूम होगा कि इनका सवाल खेतों की तरक्की का सवाल नहीं बल्कि तरह-तरह की गैर-कानूनी लूट से इन्हें बचाने का सवाल है। मिस्टर ब्राउन आई० सी० एस० का कहना है कि "मैं यह जानना चाहता हूं कि किसान यह शिकायत करते हैं कि सरकारी न्याय की तराजू का पलड़ा रुपये वालों की तरफ झुकता है। वे कहते हैं कि दीवानी के जज रुपए वालों का पक्ष करते हैं। अपढ़ किसान के मुकाबिले में हैसियतदार साहूकार की गवाही सच मानते हैं—मैं समझता हूँ कि अधिकारीवर्ग में सच्चे किसानों के उतने प्रतिनिधि नहीं हैं जितने होने चाहिए। चौधरी लालचन्द ने तो शाही कृषि कमीशन के सामने अपनी गवाही में यहाँ तक कहा कि "मुझे ऐसे मामले मालूम हैं जिनमें सरकार की मर्जी के खिलाफ भी हाकिमों ने किसानों के विरुद्ध पक्षपात से काम लिया है।"

न्याय की वर्त्तमान सरकारी प्रथा किसानों के लिए अत्यन्त अन्याय और अत्याचार-पूर्ण है। नीचे की अदालतों में जमीं-दार-वर्ग के लोग ही फरियादी होते हैं और उसी वर्ग के लोग न्यायकर्त्ता. न्याय करने वाले और इन्तिजाम करने वाले हाकिम एक ही हैं। इन्तिजामिया विभाग के जो हाकिम पुलिस के जरिये से किसानों पर मुकदमा दायर करते हैं वे ही उन मुकदमों का फैसला करते हैं। ऐसी हालत में न्याय कैसे हो सकता है?

ज्यादातर मामलो मे जो पुलिस कहती है वही होता है। खासकर एकसौ दस वग़ैरः के मुकदमो में।

किसानो पर इन अहलकारों का असर बहुत बुरा पड़ता है, 'यथा राजा तथा प्रजा' यह कहावत मशहूर है। मिस्टर डार्लिङ्ग का कहना है कि किसानो पर खासतौर पर उन लोगो का बहुत बड़ा असर पड़ता है जो सामाजिक पद मे उनसे ऊँचे होते है! जहाँ जाटों की बस्ती है वहाँ राजपूत भी जाटो के असर से अच्छे किसान बन गए है लेकिन जहाँ राजपूतों की बस्ती है वहाँ के जाट भी उनके बुरे असर से बिगड़ गये है। जालन्धर में जाट अच्छे है, वहाँ अरॉयन भी क़र्ज़ से बरी है, लेकिन फिरोजपुर के जाट फिजूलखर्च हैं इसलिए वहाँ के अरॉयन भी कर्ज़ से बँधे हुए है।

सरकारी अहलकारो की बाबत किसान क्या ख्याल करते है और उनके मन पर इन लोगों की ज़िन्दगी का क्या असर पड़ता है यह सरदार हरदत्तसिह के उस बयान से मालूम हो जाता है जो उन्होने शाही कृषि कमीशन के सामने दिया था उन्होने कहा:—"इंसान अपनी वंश परम्परा और देश कालावस्था का दास है। मध्यम श्रेणी के नवयुवक इस नियम से बरी नहीं, ये लोग ज्यादातर अधपढ़े होते है यानी सिर्फ एन्ट्रेस पास। उन्हे अपना पास-पड़ौस आकर्षक नहीं मालूम होता। गाँववालों का सादा जीवन उन्हे अच्छा नहीं लगता। वे जिलेदार, थानेदार और तहसीलदार वगैरः की जिन्दगी को अपना आदर्श बनाते है।

देना हर तरह से अनेक धन्धे मे रुपया लगाना माना जाता है और दुनियाँ के जितने मुल्कों की बाबत मै जानता हूँ उन सबमें इस तरह रुपया लगा देने पर सरकार को पैदावार बढ़ती के रूप मे कई गुना फायदा हुआ है।"

अँग्रेज इञ्जीनियर आर्नोल्ड लप्टन का कहना है कि सरकार के लिए यह बहुत बुराई की बात है कि जब देश की आबादी के काफी बड़े हिस्से को काफी खुराक भी न मिले तब गवर्नर-जनरल अपना वक्त लड़ाइयो की तैयारियो में बरबाद करे। जब आम लोगो की व्याह-शादी, कारज, दहेज वगैरः मे इतना कर्ज लेना पड़ता है कि उसे वे जिन्दगी भर नहीं चुका सकते तब मै सोचता हूँ कि सरकार मे कही न कही कुछ गड़बड़ जरूर है। हर एक शासक का सबसे पहला फर्ज यह होना चाहिये कि वह यह देखे कि लोगो की माली हालत इतनी अच्छी हो सकती है कि कहीं जिससे वे साधारण तौर पर अच्छा खा सकें, अच्छा पहन सके, अच्छे घरो मे रह सकें और ऐसी स्वच्छता के साथ कि जिससे अच्छे स्वास्थ्य का का सुख भोगे। यही राष्ट्रीय भलाई की पहली शर्त्त है।" उनका कहना है कि अगर मै हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल होता तो इस बात की परवा न करता कि तिब्बत या उत्तर-पश्चिम के पामीरो मे क्या हो रहा है? न मै अमीर काबुल को तङ्ग करता न फारिन की तनिक भी फिक्र करता। मै तो सबसे पहले यह देखने की कोशिश करता कि सल्तनत बर्त्तानियाँ की तमाम ताकत लगा कर भी मै दुनियाँ के सामने यह ऐलान कर सकता

हूं कि नहीं कि मैंने हिन्दुस्तान के आम लोगों को इतना अमीर बना दिया है कि दुनियाँ की दूसरी बड़ी कौमों से बखूबी उनका मुकाबिला किया जा सके। लेकिन हिन्दुस्तान में जो गवर्नर जनरल भेजे जाते हैं वे एक ऐसे वर्ग से भेजे जाते हैं जिन्हें यह पता ही नहीं कि मुसीबत कहते किसे हैं? अगर हम अपने यहाँ के मजदूरों में से किसी को गवर्नर जनरल बना कर भेजें तो वह सब से पहले हिन्दुस्तान के कमकरों की माली हालत की जाँच करेगा और फिर इस बात की कोशिश करेगा कि उनकी गरीबी को दूर किया जाय। Happy India p. 25

मौसम के महकमे से भी किसानों को पूरा फायदा नहीं पहुँच पाता। एक गवाह ने शाही कृषि कमीशन के सामने कहा कि यह महकमा किसानों के लिए किसी काम का नहीं। इसके अन्दाज आम तौर पर गलत होते हैं। और इसकी जो कुछ भी दैनिक रिपोर्ट या सालाना अन्दाज होते हैं वे किसानों के पास वक्त पर नहीं पहुँचते।

किसानों की तरक्की के कामों के लिए सरकार हमेशा बजट में पैसा न होने की बात पेश करती है जब कि १९३९ के विश्व-व्यापी महायुद्ध में हम देख चुके हैं कि सरकार के पास अरबों रुपए साल तक खर्च करने की कोई कमी नहीं है। हिन्दुस्तान के मौजूदा वायसराय लार्ड वेवल तक ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि लड़ाई के लिए तो सरकार को पचास-पचास करोड़ रुपए रोज तक खर्च करने में पैसे की कोई दिक्कत नहीं मालूम होती लेकिन जनता की भलाई के कामों के लिए पचास

करोड़ साल भी नही दे सकती ! खुद इङ्गलैंड की सरकार जनता की भलाई के कामो के लिए करोड़ो रुपए साल कर्ज लेकर काम चलाती है। डार्लिङ्ग जैसे किसान-समस्या के सरकारी विशेषज्ञ आई० सी० एस० किसानो की भलाई के कार्यो के लिए कर्ज लेने की आवश्यकता और उपयोगिता को प्रतिपादित करते है लेकिन चूँकि सरकार किसानो की सरकार नही है इसलिए उसके कानो पर जूँ तक नही रेगती। अङ्गरेज इंजीनियर आरनोल्ड लप्टन ने यह ठीक ही कहा है कि अगर हिन्दुस्तान के गवर्नर और गवर्नर जनरलो, ब्रिटेन, ब्रिटिश जाति और ब्रिटिश साम्राज्य की इज्जत रखना चाहते है तो उन्हे हिन्दुस्तान की गरीबी को दूर करने के काम मे जुट जाना चाहिए।

किसानो मे अज्ञान का साम्राज्य है। उनमे से लगभग नव्वे फीसदी के लिए काला अक्षर भैस बराबर है। किसानो का यह अज्ञान उनकी उन्नति के मार्ग मे एक सबसे बड़ा रोड़ा है। इसके कारण वे सब प्रकार की धार्मिक और सामाजिक दासताओ के मूढ़ तथा अन्ध विश्वास और कुप्रथाओ के शिकार रहते है। इसी के कारण वे अपने फायदे की कानूनो और महकमो से पूरा तो क्या आंशिक लाभ भी नही उठा सकते। इसी के कारण वे तरह तरह के कानूनी शोषण के शिकार होते है। लेखक को स्वयं यह मालूम है कि सन् १९२६ मे जब संयुक्त प्रान्त के नये कानून से किसानो को हीन हयाती मौरूसी का हक़ मिला तब एक राजा साहब ने अपने किसानो से यह कह कर कि

हम तुम्हे यह हक़ दे रहे है बीसियो हजार रुपए ठग लिये। लगान की छूट के परचो मे भी इसी तरह पटवारियो ने किसानो को खूब लूटा खाया। पढ़े-लिखे न होने की वजह से किसानों के लिए अर्जी वगैरः लिखना तो गैर-मुमकिन है ही वे रसीद और रुक्के तक नही पढ़ पाते, पटवारी के कागजातो मे अपने इन्दराज नहीं पढ़ पाते। फलस्वरूप हमेशा बौहरो, जमीदारो और पटवारियो से अपने हाथ कटा बैठते है, और इन लोगो के नीचे किसानो की गर्दन हमेशा दबी रहती है।

हिन्दुस्तान के नेता लगभग पचास बरस मे अनिवार्य और निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सरकार पर जोर डालते रहे हैं लेकिन उनकी यह माँग आज तक भी पूरी नहीं हुई है। यानी किसानो के अज्ञान का भी प्रधान कारण किसान-राज का न होना ही है। जापान, रूस वगैरः मे वहाँ की सरकार ने बीस-तीस बरस मे ही अपने देश से निरक्षरता निशाचरी को मार भगाया है। हिन्दुस्थान की सरकार जिस रफ्तार से साक्षरता बढ़ा रही है उस रफ्तार से तो वह सैकड़ो बरस मे दूर हो पायगी। सच बात यह है कि हिन्दुस्तान की सरकार अभी तक किसानो की प्रारम्भिक शिक्षा और उनकी कृषि-सम्बन्धी शिक्षा की सुव्यवस्थित और दोषहीन तथा हितकर योजनाएँ तक नहीं बना पाई है। किसानो की प्रारम्भिक शिक्षा के मामले मे उसके शिक्षा-विशेषज्ञों को महात्मा गांधी के नेतृत्व मे तैयार की गई वर्धा-नैतिक-शिक्षा-योजना की शरण लेनी पड़ी है।

हिन्दुस्तान की कृषि-सम्बन्धी शिक्षा कितनी सदोष और

बेकार है इसका पता शाही कमीशन के सामने दी गई गवाहियो से भली भाँति चल जाता है।

१८७५ के शाही कमीशन का कहना है कि "पढ़ा-लिखा न होने की वजह से किसान दस्तावेजो को समझना तो दूर, पढ़ भी नहीं सकता, अदालत मे अपनी सही सफाई भी अच्छी तरह नही दे सकता। इन बातो से सहज ही लोगो का जो उनके ऊपर सैकड़ों तरह की शैतानी करने को ललचाता है।" बौहरे, जमीदार सरकारी अहलकार, चौकीदार, पटवारी, पतरौल, मुखिया; यहाँ तक कि स्कूल के अध्यापक, फकीर, पण्डित, पुजारी, पुरोहित सब किसानो को नोचते-खाते है, इनसे लेकर ब्रिटिश-साम्राज्य और बहुत से राजनैतिक दल तक खुले दिल से बेधड़क उनका शोषण करते है। फिर, बौहरों की बेईमानियो और जमीदारो के जुल्मो और ज्यादतियो का तो कहना ही क्या है?

संसार भर मे, लगभग सर्वत्र ही जहाँ-जहाँ किसानो का राज नहीं है वहाँ-वहाँ किसानो को इन सब कष्टो का गरीबी, गुलामी, अज्ञान और शोषण का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ तक कि विज्ञान भी किसानो के लिए घातक ही सिद्ध हो रहा है। बड़े-बड़े उद्योग धन्धो मे नये नये वैज्ञानिक आविष्कारों से किसानो मे गरीबी और बेकारी बढ़ती है, गाँव ऊजड़ होते है, किसान भूमि से उन्मूलित होकर तरह-तरह की नारकीय यात-नाये सहते है। १६३८ की बम्बई औद्योगिक सर्वे कमेटी का कहना है कि हिन्दुस्तान मे मिलो के बढ़ने से बेकारी और आर्थिक सङ्कट मे वृद्धि तथा फी व्यक्ति की आमदनी मे कमी

अहिंसात्मक उपायों से अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे फलस्वरूप उन पर अकथनीय क्रूरता की जा रही थी। सैकड़ों किसानों के कोड़े लगाये गये। उनकी बहू-बेटियों की बेइज्जती की गई। उनके स्कूल बन्द कर दिये गये। उनकी सहयोग समितियों के भण्डार लूट लिये गये। उनके पुस्तकालय नष्ट कर दिये गये। दस बरस बाद १९३० में भी इस दमन-दावानल का अन्त नहीं हुआ। इस साल के जून से लेकर सितम्बर तक बीस हजार उकरेनियन किसान गिरफ्तार हुए। पोलिश पार्लियामेंट में उकरेनियाँ के जो छब्बीस प्रतिनिधि थे उनमें से सोलह गिरफ्तार कर लिये गये। बहुत से लोग चोटों से मर गये। लूई एडैमिक ने Natives Return नामक पुस्तक में मध्य यूरुप में किसानों के क्रूर दमन का अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

सोवियत रूस के किसानों पर जो कुछ बीती, वहाँ लाखों आसूदा किसान-परिवारों को किस तरह बरबाद तथा बे घर-बार किया गया तथा लाखों ही किसान किस तरह उनके पेट का अन्न छीन कर भूखों मार डाले गये यह भी सब को मालूम है।

भारत में किसानों के दमन की कथा किसी से कम काली नहीं हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम अर्धभाग में दक्षिण और बङ्गाल वगैरह में तथा नील के कोठियों ने वहां के गुलाम किसानों को किस तरह कुचला गया। चम्पारन में किसानों के साथ १९१९ तक क्या होता रहा, १९२० में संयुक्त प्रान्त के एक आन्दोलन और प्रतापगढ़, फैजाबाद, रायबरेली वगैरह में होने

वाले शुद्ध किसान आन्दोलनो के, बारदोली के किसान-सत्याग्रह के तथा १६३०-३१ मे आन्ध्र, गुजरात, संयुक्त प्रान्त के किसान आन्दोलनो के दमन मे जो कुछ किया गया उसे कौन नहीं जानता ? लेकिन कड़े से कड़ा दमन भी किसानों की जाग्रति की लहर को कम नहीं कर पाया, उसने किसानो की असन्तोषाग्नि मे घी का ही काम किया है ।

सङ्कट-मोचन-योजना

किसानों के इन कष्टों का कभी अन्त होगा? होगा तो कैसे? ये प्रश्न हैं जो प्रत्येक किसान और किसान-सेवक के मनमें रह-रह कर उठते हैं। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर पर किसानों का भविष्य निर्भर है। ये ही प्रश्न किसान-समस्या के मुख्य और मौलिक प्रश्न हैं।

निश्चित है कि किसानों का और उनके कष्टों का कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है। किसानों के ये कष्ट ईश्वर-कृत नहीं, मनुष्य-कृत हैं। प्राकृतिक नहीं, अप्राकृतिक हैं। इन कष्टों का एक मात्र कारण वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था, किसानों की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक गुलामी है।

प्राचीन भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब यह सामाजिक अव्यवस्था न थी, जब किसान और जनता जो पर्यायवाची थे और हैं, चौमुखीदासता के चंगुल में नहीं फँसे थे। तब वे सुखी, स्वस्थ, सभ्य और समृद्ध थे।

हिन्दुस्तान में बसने वाले आर्यों की सभ्यता किसानों की सभ्यता थी। आत्मा को ऊपर उठाने वाले वेदों के दिव्य गीत किसानों के ही गीत हैं। उन दिनों किसानों का जीवन स्वर्गीय जीवन था। जो किसान आज हिन्दुस्तान में नारकीय कष्ट भोग रहे हैं उन्हीं के पूर्वज उन दिनों यहाँ स्वर्ग के आनन्द ले रहे थे जिन्हें ईश्वर उनके

देवता भी यह गीत गाते थे कि भारत-भूमि भाग तुम धन्य हो। वेदों की प्रार्थनाएँ किसानो के पशु और कृषि-धन की रक्षा की और किसानो के गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक जीवन को पूर्ण, दिव्य और सुखमय बनाने की प्रार्थनाएं है। ऋग्वेद में ऐसा प्रार्थनाएँ भरी पड़ी है। उनके देवताओ मे इन्द्र सबसे बड़ा सब देवताओ का राजा है क्योकि वह पानी बरसाता है। सूर्य-नारायण का स्थान भी बहुत ऊँचा था क्योंकि वे उनकी फसल पकाते थे। किसान के गो-धन तथा गोबर-धन की पूजा तो स्वयं कृष्ण भगवान ने की थी। आज भी किसानो के लड़के पशु चराते है। उस कन्हैया का बालपन धेनु चराने मे बीता। सुखी-सम्पन्न तथा शान्ति और सन्तोषमय उस किसान-जीवन की परिस्थितियो मे ही वे ऋषि-मुनि उत्पन्न हुए थे जिन्होंने परलोक और परा-विद्या, ब्रह्म, जीव और आत्मा के सम्बन्ध मे ऐसे ऊँचे से ऊँचे विचार सोचे जिन्हे देख कर संसार भर के पारखी विद्वान आज भी आनन्द और विस्मय से विह्वल हो जाते है।

उन दिनों दूध-दही इतना होता था कि यहाँ के किसान दूध-दही की नदियों की क्षीर-सागर की कल्पना करते थे। माखन-मिश्री से उन्हें इतना प्रेम था कि उनके भगवान उसकी चोरी करते थे। उनके शेप, महेश, सुरेश भी जिनके गुण नही गा पाते थे उन्हे अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ के लिए नाच नचाती थीं! कृष्ण भगवान किसानो के ही भगवान थे। वे स्वयँ गोपाल थे।

जगज्जननी सीता जी की पति-भक्ति, मर्यादा पुरुषोत्तम

रामचन्द्रजी की पितृभक्ति, वीर शिरोमणि लक्ष्मणजी की भ्रातृ-सेवा, आदर्श-भाई भरत का भ्रातृप्रेम तथा इन सबके त्याग और तपोमय जीवन ये सब किसानों के आदर्श है। रामायण किसानों का महाकाव्य है। औद्योगिक युग में इन पारिवारिक दिव्य गुणों को कहीं स्थान भी नहीं मिलता। वाल्मीकीय रामायण मे बालकाण्ड मे लिखा है कि राजा दशरथ के राज में ऐसा कोई न था जो पढ़-लिख न सके। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन से सन्तुष्ट था क्योंकि कोई गरीब न था। इसी ग्रन्थ में ऋषि मतङ्ग ने कृषि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

महाभारत के बाद भी हिन्दुस्तान के किसान सुखी-सम्पन्न और खुशहाल थे। वे सुख, सन्तोष और सम्मान की जिन्दगी बसर करते थे। चीनी यात्री फाहियान पाँचवीं और ह्वांग्साँग पाँचवीं शताब्दी मे भारत आये थे। उन्होंने अपनी यात्रा के वर्णनों मे लिखा है कि उन दिनों हिन्दुस्थान मे खेती बहुत अच्छी होती थी। आमतौर पर दो और समय समय पर तीन फसले होती थीं। गाँव स्वयं पर्याप्त थे, गाँव वालों को उनकी जरूरतों की सब चीजे गाँव में ही मिल जाती थीं। उनके लिए उन्हे न तो बाहर ही भटकना पड़ता था, न दूसरो का मुँह ही ताकना पड़ता था। उनसे पहले यानी आज से कोई चौबीस सौ बरस पहले मेगस्थनीज नाम का जो यूनानी यात्री भारत मे आया था उसने भी हिन्दुस्थान के किसानों की खुशहाली का वर्णन किया है।

उन दिनों गाँवों मे स्वराज्य, किसानों का राज था। डाक्टर

ऐनी विसेन्ट का कहना है कि भारत के गॉवो मे शताब्दियो तक सहस्रो वर्ष तक स्वराज्य रहा है। सन् ईसवी के सातसौ वरस पहले हिमालय और नर्मदा के वोच मे किसानो की सोलह वादशाहते थी। पुराणो मे भी गाँवो के स्वराज्य का वर्णन मिलता है।

मनु महाराज ने मनुस्मृति मे गॉवो को ही स्वराज्य की इकाई माना है। उनका कहना है कि पहले एक गाँव मे, फिर सौ गॉवो मे फिर एक सहस्र गाँवो में इस तरह राज का प्रवन्ध वाँधना चाहिए। सन् ईसवी के चारसौ वरस पहले कोटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र मे गॉवों के स्वराज्य का वर्णन किया है। सातवी शताब्दी मे लिखी गई शुक्रनीति मे भी गॉवो के स्वराज्य का उल्लेख मिलता है। वौद्ध-काल मे भी भारत मे गॉवो का ही स्वराज्य था। वौद्ध-कालीन भारत के इतिहास के लेखक (Rhy Davids) का कहना है कि उस काल का इतिहास गॉवो के स्वराज्य की कथाओ से भरा पड़ा है।

उन दिनो गाँव वाले अपना मुखिया, अपना पटवारी और अपनी पञ्चायत स्वय चुनते थे। अव ये वातें सपने की हो गई है परन्तु उन दिनो मे कर्मचारी तथा ये संस्थाएँ गॉव वालो के सामने जवावदेह थे। गॉव वाले जव चाहते तव इन्हें निकाल सकते थे।

भूमि पर किसानो का ही अधिकार था। वे ही उसके मालिक थे। गाँव-गॉव मे तालाव, मन्दिर, पाठशालाएँ और धर्मशालाएँ थी। उन दिनो के कानून के मुताबिक हर गृहस्थ

किसान को मकान बनाने के लिए जमीन मिलती थी। किसान अपने घर की चाई़ं और तरह-तरह के फूल लगाते थे, आनन्द अनुभव करते थे। किसानों के गृहोद्यानों में फूलों के साथ-साथ तरकारियाँ भी होती थीं।

राजाओं के अधिकारों की भी सीमा होती थी। वे मनमानी, मनमानी नहीं कर सकते थे। एक राजा से उसकी प्रेमिका ने प्रजा के किसी व्यक्ति के विरुद्ध कुछ कार्यवाई करने की हठ की, तो राजा ने जवाब दिया कि "अपनी प्रजा पर मुझे कोई अधिकार नहीं। मैं उनका स्वामी नहीं। जो कोई पाप या विद्रोह करे केवल उसीके विरुद्ध कार्यवाही करने का मुझे अधिकार है।" यह बात बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड रानल्डशे ने अपनी (India-a Birds eye view) नाम की पुस्तक में उद्धृत की है।

उन दिनों हर गाँव में काफी चरागाह थे। मनुस्मृति में चरागाह छोड़ने का विधान है। गाँव के सब किसानों के जानवर उन चरागाहों में चरते थे। न्यूनाधिक-रूप से सब गाँवों में जंगल होते थे। इन जंगलों में हरएक किसान मकान बनाने वगैरः के लिये लकड़ी ले सकता था और खाद के लिये पत्ते बटोरता था।

बौद्धकालीन भारत' नामक इतिहास ग्रन्थ मे लिखा है कि बौद्धो के ज़माने मे गॉव वाले मिलकर बड़े चाव और पूर्ण जिम्मेदारी के साथ मुहल्ले और धर्मशालाये बनाते थे, सड़कें ठीक करते थे और पार्क लगाते थे। स्त्रियॉ भी गर्व के साथ इन कामो मे योग देती थीं।

पञ्चायते न्याय करती थी। उनके न्याय मे न तो खर्च ही करना पड़ता था और न अन्याय ही होता था। उनमें ग़रीब से ग़रीब के साथ भी न्याय होता था। लोग झूठी गवाही नही दे सकते थे क्योकि उन्हे डर रहता था कि गॉव वालों से सचाई नहीं छिप सकेगी, झूठ पकड़ी जायेगी और हमारी बड़ी ज़िल्लत होगी। मिस्टर जानमैथाई (Mr. Jehn Mathai) ने अपनी "Village Government in British India" नामक पुस्तक में लिखा कि "इन पञ्चायतो मे दोनो फरीको के लिये यह लाजिमी होता था कि वे सच-सच बयान करे। छोटी सी जमात मे जहाँ लोग रात दिन एक ही जगह रहते हो, यह मुमकिन नहीं कि कोई भी शख्स जो आराम से रहकर अपनी ज़िन्दगी गुज़ारना चाहता है वह अपने गॉव वालों के सामने झूठ बोले। मिस्टर (A. D. Campwell) ऐ. डी. कैम्पवैल आई. सी. ऐस. का कहना है कि अगर पचायतो का फैसला सरकार के माफिक होता था, तो भी फरीक उसे खुशी से मान लेते थे। मि. स्लीमेन का कहना है कि "मेरा विश्वास है कि दुनियाँ भर मे और किसी से इतनी आसानी से सच सच नहीं कहाया जा सकता, जितनी आसानी से हिन्दुस्तानियो से पञ्चायत के सामने। क्यो कि

पञ्चायतों में उन्हें अपने रिश्तेदारों, बड़े बूढ़ों और पड़ोसियों के सामने बयान देना पड़ता है। गांव में रहकर सुख पूर्वक जीवन बिताने के लिये यह निहायत ज़रूरी है कि गांववालों की नज़रों से न गिर जावे। इस डर से पञ्चायत में सबको सच बोलना पड़ता था।

मुसलमानों के हमलों से जब देश में भारी उथल पुथल हुई तब भी गांवका स्वराज्य नष्ट नहीं हो पाया। सन् १९०७ के विकेन्द्रीकरण डी. सेन्ट्रलाइजेशन कमीशन का कहना है कि "पहले गांवों को बहुत कुछ स्वतंत्रता मिली हुई थी। हज़ारों बरस हिन्दुस्तान के गांवों में स्वराज्य यानी किसानों का राज्य था। हमले होते थे, कायदे बदलते थे, ज़माना रंग पलटता था, लेकिन गांव ज्यों के त्यों कार्यशील बने रहते थे।" सन १८३० में सर चार्ल्स मेटकाफ ने कहा था कि, "गाँव की जमायतें छोटे-छोटे किसान राज्य हैं। जब और कोई भी चीज़ नहीं टिक पाती तब भी यह किसान-राज्य अचल रहते हैं। एक राजवंश के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस तरह सैकड़ों राजवंश बर्बाद हुये। क्रान्तियों के बाद क्रान्तियां होती हैं। लेकिन गांव अचल हैं।" सर हेनरीमेन के कथनानुसार गाँव के स्वराज्य में थाग[illegible] रहते थे। उन्हें फसल में से कुछ हिस्सा दे दिया जाता था, कुछ को नकद तनख्वाह भी दी जाती थी और कुछ को मुआफी। इन अफसरों के मरने पर उनके वारिस उनकी जगह पर काम करते थे, लेकिन गाँव के नौकर की तरह, मालिक की तरह नहीं, क्योंकि गाँव वालों को उन्हें निकाल देने और कायम

कर देने का अधिकार रहता था। मुखिया ही गाँव के खर्च-देहात खर्च के लिये गाँव वालो से फण्ड उगाह लेता था। मुखिया ही गाँव का मजिस्ट्रेट और गाँव की पुलिस का सुपरिन्टेण्डेण्ट होता था। गाँव पर मालगुजारी भी गाँव वाले ही लगाते थे। गाँव की पुलिस का इन्तजाम भी गाँव वालो के हाथ मे होता था। पञ्चायत न्याय करती थी और गाँव की भलाई के कामो के लिये टैक्स लगाती थी। यद्यपि गाँव केन्द्रीय सरकार के अधीन होते थे लेकिन उन्हे गाँव के भीतर पूर्ण स्वराज्य मिला हुआ था। सर हेनरी मैन ने यह बाते अपनी "Village Communities in the East and West" नामक पुस्तक में लिखी है।

सर जदुनाथ सरकार का कहना है कि मुगल बादशाहो ने गाँवो के जीवन मे कोई दस्तन्दाजी नही की। हरएक गाँव, पुराने ढंग पर अपना सुख, शान्ति और सम्मानमय जीवन व्यतीत करता रहा। दूसरे विद्वान इतिहासकार प्रयाग विश्व विद्यालय के इतिहास विभाग के एक आचार्य डाक्टर बेनीप्रसाद का भी यही कहना है कि मुगल बादशाह गाँवो के स्वराज-किसान-राज की हमेशी रिवाज की इज्जत करते थे और यह इज्जत अठारहवीं सदी तक कायम रही। मुग़ल बादशाह शेरशाह ने मालगुजारी के सिलसिले मे बहुत से सुधार किए। उसके समय मे सूखा से और किसी कारण फसल को नुकसान होजाता तो वह किसानों को फौरन तुकावी देता था। वह अपने किसानो को सिपाहियो अथवा अमला अहलकारो द्वारा लूटे जाने और मुकदमेबा

से बचाता था। उसका कहना था कि "अगर कोई राजा अपने ग़रीब किसानों को मुसीबतों से नहीं बचा सकता तो उसका उ से मालगुज़ारी वसूल करना सरासर ज़ुल्म है।"

आईने अकबरी में लिखा है कि "अमलगुज़ार (कलक्टर) को किसानों का दोस्त होना चाहिये। उसे ऐसी जगह रहना चाहिये जहाँ हरएक शख़्स आसानी से उसके पास पहुंच सके। उसे चाहिये कि वह राज का इन्तिज़ाम इस तरह से करे कि जिससे किसी को शिकायत करने का मौका न मिले। उसे क़र्ज़ देकर ग़रीब किसानों की मदद करनी चाहिये और इस क़र्ज़ को धीरज के साथ वसूल करना चाहिये। खेतों की नाप-जोख में हमेशा ईमानदारी और दूरंदेशी से काम लेना चाहिये। हर साल किसानों की ताक़त और उनकी सहूलियतों को जानता रहे। अपने वादे पर क़ायम रहे और मुक़र्रर की हुई रक़म से एक पाई भी ज़्यादा न ले। बन्दोबस्त करने के वक़्त सिर्फ़ देहात के बड़े-बड़े आदमियों से ही मिलकर वह न करे क्योंकि ऐसा करने से दुष्टों तथा अत्याचारियों को अनुचित अधिकार मिल जाता है और काम में बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। उसे चाहिये कि वह हरएक किसान से जान-पहचान करके हर किसान को उसके काम के पर्चे दे और अपने काम के पर्चे उनसे ले। लगान की तहसील मसलहत के साथ करे और कुसमय वसूलयाबी के लिए हाथ न बढ़ाये।" अकबर किसानों के साथ सच्ची हमदर्दी रखता था। औरंगज़ेब भी किसानों को तक़ावी देता था। उसके राज में सरकार खेती के काम के लिए कुएँ बनाती थी। औरंगज़ेब

की ख्वाहिश और उसका मकसद यही था कि खेती की तरक्की हो और किसानो की भलाई।

शाइस्ताखॉ और फरीदखॉं के राज्य मे भी किसान खुशहाल थे। इन बातों से स्पष्ट है कि मुल्क मे मुसलमानी राज मे भी किसानो के ग्राम्य-स्वराज में ऐसा फर्क नही पड़ा।

उन दिनो खेती के पूरक और सहायक धन्धो की भी कमी नही थी गॉवो के बहुत से लोग इन रुज़गारो मे लगे रहते थे। इन धन्धो से किसानो को खासी अच्छी आमदनी होती थी जिसके कारण फसल खराब होने पर, अकाल पड़ने पर और जोते छोटी होने पर भी लोगो के पास खाने को पैसा रहता था, वे खुशहाल रहते थे। उन दिनो पैसे का अकाल नहीं था।

घरों मे किसानो की औरते कपास ओट लेती थी और सूत कात कर कुछ पैसे कमा लेती थी। घर के कते सूत का कपड़ा भी गॉव मे ही जुलाहे से बुनवा लिया जाता था। अकेले इस रुजगार से बहुतो को रोजी चलती थी। धुने, जुलाहे, रंगरेज वगैरः सिर्फ इसी धन्धे के बल पर अपना तथा अपने परिवार का पेट पालते थे। हर एक किसान परिवार भी इस रुजगार की वजह से घर बैठे चार पैसे रोज कमा लेता था।

उन दिनो किसानो की कामधेनु रूपी यह रोजी इतनी चटक रही थी कि हिन्दुस्तान का बना कपड़ा करीब-करीब दुनियाँ भर मे जाता था एशिया का काम तो हिन्दुस्तान के सूती कपड़ों के बिना चल ही नहीं सकता था। मोरलैण्ड ने अपनी From Akbar to Aurangazab नामक पुस्तक मे लिखा है कि सिर्फ

दक्षिण एशिया के मुल्कों से ही हिन्दुस्तान मे कपड़ो की इतनी मॉग आती थी कि गुजरात और ईस्ट कोस्ट के जुलाहो को उस मॉग की पूर्ति का अवकाश ही नहीं मिलता था। सत्रहवी शताब्दी मे हिन्दुस्तान के व्यापार की यह हालत थी कि सर थामसरो के शब्दो मे, 'यूरुप की खून पसीने की कमाई से एशिया मालामाल हो रहा था।'

छीटें हिन्दुस्तान मे करीब-करीब सब जगह बनाई जाती थीं और बहुत बड़ी मिकदार में दूसरे देशों मे भेजी जातीं थीं। हिन्दुस्तान की मलमल मिश्र फारिस और अरब मे भी जाती थीं। पहनने के कपड़ो और कीमती कपड़ो का कुल व्यापार देश के लिए बड़े महत्व का था। पुर्त्तगीज अपने जहाजों मे हिन्दुस्तान का कपड़ा ले जाते थे और अफरीका तथा अमेरिका में भेजते थे।

सन १६८२ मे ईस्टइण्डिया कम्पनी के डिप्टी गवर्नर ने इङ्ग-लेड के बादशाह पहले जेम्स को रिपोर्ट की कि "हिन्दुस्तान की बनी छींटें बड़े काम की और बढ़िया होती हैं और इङ्गलैण्ड में खूब बिकती हैं।" उन दिनों अंग्रेज कारीगर हिन्दुस्तान के सूत से बहुत काम लेते थे।

कपड़े के बाद नील का व्यापार था जिसमें करोड़ों की रोजी चलती थी। Imperial Ga·ette of India में लिखा हुआ है कि सोलहवीं सदी की शुरूआत तक नील की खेती और उसके रोजगार से लाखों की रोजी चलती थी।

सत्रहवीं सदी मे आगरा नील और कपड़े के व्यापार का केन्द्र था। डच लोगो ने आकर पहले पहल आगरा मे ही अपना अड्डा जमाया और नील के व्यापार को हथियाया। सूती कपड़े की भारी खरीद आगरे के अड़ोस-पड़ोस मे ही होती थी। अवध के खैराबाद, दरियाबाद वगैरह का वना कपड़ा आगरा से ही विलायत को जाता था। खुश्की से नील का व्यापार भी आगरा होकर ही होता था।

उन दिनो किसान इतने अपढ़-कुपढ़ भी नहीं थे। मैक्समूलर साहब ने सरकारी कागजात और मिशनरी रिपोर्टों की बुनियाद पर कहा है कि ब्रिटिश राज क़ायम होने से पहले बङ्गाल मे काफी अच्छी देशी पाठशालाएँ थी। हर चार सौ जन संख्या के लिए एक पाठशाला थी। इस बात का उल्लेख करि हार्ग साहब ने भारत पर लिखी अपनी पुस्तक मे किया है लडलो साहब ने कहा है कि मुझे विश्वास दिलाया गया है कि उस हर एक हिन्दू गॉव मे जिसमे पुराने जमाने की बातें अभी कायम है बच्चे आमतौर पर लिख पढ़ सकते है। मिस्टर जानमैथाई का कहना है कि "जब अङ्गरेजो ने हिन्दुस्तान पर कब्जा किया था तब उन्होने पाया था कि यहाँ राष्ट्रीय शिक्षा की व्यापक प्रणाली प्रचलित थी। ऐनसाइकिलोपीडिया ब्रिटेन मे लिखा है कि, "अपने इतिहास के किसी भी समय मे हिन्दुस्तान अशिक्षित देश नहीं रहा। कई राज वदले, लेकिन इतने राजो के वदलने पर भी सीधी-सादी देशी भाषाओ की सरल शिक्षा हमेशा हर बड़े गॉव मे दी जाती रही।

डाक्टर ऐनीविसेन्ट का कहना है कि सन् १८५० से पहले हिन्दुस्तान कभी भी गरीब नहीं था। सन् १८१३ में ब्रिटिश हाउस आफकामन्स की एक कमेटी के सामने सर टामस मनरो ने कहा था कि 'अगर खेती का अच्छा तरीका, तरह-तरह की चीजें बनाने में आसानी, हुशियारी, सुविधा और विलासिता की चीजें पैदा करने की लियाकत, लिखना-पढ़ना और हिसाब सिखाने के लिए हर गाँव में मदरसों का होना अतिथि सत्कार की आम रिवाज, एक दूसरे की मदद करना और इन सब से ज्यादा स्त्रियों के साथ आदर्श और विश्वास का व्यवहार सभ्यता के चिन्हों मे से है तो हिन्दू यूरुप की किसी भी क़ौम से सभ्यता में पीछे नहीं है। और अगर सभ्यता का व्यापार होने लगे, वह व्यापार की वस्तु हो जाय तो मुझे विश्वास है कि इङ्गलैंड की सभ्यता के बदले में हिन्दुस्तान की सभ्यता लेने में इङ्गलैंड को फ़ायदा रहेगा।"

इस प्रकार किसानों का अतीत तो सुख-समृद्धि और गौरव-पूर्ण था ही, उनका भविष्य भी सर्वथा उज्ज्वल और अपरिहार्य है। यह युग जन-जाग्रति का युग है। सामूहिक मनोविज्ञान के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान लेखक ने अपनी The Crowd नामक पुस्तक में प्रतिपादित किया है कि वर्त्तमान युग जन-समूह का युग है—यह ज़माना जमात की करामात का जमाना है।

समय की गति, संसार-प्रगति पुकार-पुकार कर यह कह रही है कि यह युग किसानों का युग है—यह जमाना किसानों का जमाना है।

यद्यपि किसान-आन्दोलन की ओर लोगों का उतना ध्यान नहीं गया जितना मजदूर-आन्दोलन की ओर (,) मजदूरों की हलचलों के शोर-गुल में किसानों की क्रान्तियों की ध्वनि लोगों के कानों में नहीं पड़ी, फिर भी यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि यूरोपीय महायुद्ध के बाद लगभग सभी देशों में किसानों ने अपनी शक्ति और जाग्रति का पूरा परिचय दिया है।

पाश्चात्य देशों के सम्बन्ध में, 'मैसाचूसेट्स अमेरिका के कृषि कालेज के प्रेसीडेन्ट मिस्टर कीत्योवटरफील्ड का कहना है कि, "यह निश्चित है कि पिछली कई शताब्दियों में किसान ज्यादातर देशों में दूसरों के दबैल रहे हैं। जो जमीन वे जोतते थे वह भी उनकी नहीं रही थी। संसार के कई विशाल देशों में कई युगों तक किसान वास्तव में गुलाम थे। कुछ देशों में तो अब भी वे भूमि के साथ बँधे हुए हैं। यहाँ तक कि इन देशों में यदि कोई ज़मींदार अपनी जमीन बेच देता है तो किसान भी नये मालिकों के हाथों बिक जाते हैं। वे जमीन छोड़ कर नहीं जा सकते। अगर कोई देश निरक्षरता, अज्ञान और मूढ़ विश्वासों के कारण अन्धकारमय है तो उस देश का सबसे अधिक अन्धकारमय भाग गाँवों वाला भाग होगा। ज़मीन जोतने वाले अपनी बुरी हालत में गुलाम होकर रहते हैं और अच्छी हालत में कुछ चमकते अपवादों को छोड़ कर विरले ही मुल्क ऐसे होंगे जिनकी राज-परिषदों में किसान उन लोगों के साथ बैठे हों जो पब्लिक के भाग्य का फैसला करती हैं। ऐसे देश भी बहुत कम ही थे जिनके राज-दरबार में उन मामलों में भी किसानों को

किसान-परिवारों में बॉटी जा चुकी थीं। कनाडा मे किसान-ऐक्य सङ्घ (Farmers Unity League) था जो किसानो के कष्ट नाशक कानून बनाने के लिए कोशिश कर रहा था। १६११ मे इस आन्दोलन के सिलसिले मे सातसौ किसान कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए इनमे से १५५ को ११६ साल की सजाएँ मिलीं। बहुतो को देश निकाला हुआ। किसानो की सभाएँ भंग की गईं, उनके पत्र तथा उनकी पुस्तके जब्त कर ली गईं।

चीन का सफल किसान- आन्दोलन संसार भर के किसानो के लिये नमूना है। वहाँ के कम्यूनिस्ट नेताओ ने किसानो की शक्ति और उनकी चित्तवृत्ति को ध्यान मे रख कर अपना कायक्रम मार्क्सवादी आदर्श भूमि के राष्ट्रीकरण के विरुद्ध जो जोते सो जमीदार के वास्तविक सिद्धान्त पर छोटे-छोटे किसानो की चित्तवृत्ति और उनके स्वार्थों के अनुकूल सिद्धान्त पर बनाया। फलतः वहाँ कई सूबों मे किसानो का पञ्चायती राज कायम हो गया। किसाना की खासी अच्छी सेना बन गई। और इस आन्दोलन के कम्यूनिस्ट नेताओ का दमन, किसानो की सहायता के कारण, चाङ्गकाईशेक उनमे निरन्तर दस बरस तक १६२७ से १६३७ तक युद्ध करके भी नहीं कर पाया।

चीन का किसान-आन्दोलन सन् १६२४ में शुरू हुआ था। कुछ ही महीनो मे उसे आशातीत सफलता मिली। अक्टूबर १६२६ मे चीन की राष्ट्रीय-पार्टी क्यूमिन्टैङ्ग को उसके किसान-विभाग ने रिपोर्ट की कि "कई सूबो मे किसान-सभा के लाखों मेम्बर बन चुके है। १६२७ के मार्च मे अकेले हुनान ... में

तीन करोड़ किसान, किसान-सभाओं के मेम्बर हो गये।" इसी साल मई में किसानों ने बड़े-बड़े जमींदारों की जमींदारियाँ छीनकर आपस में बाँट लीं। किसान सेना की टुकड़ियों के छापों ने सन् १९३२ में जापानी सेना को इतना परेशान कर दिया था कि वे आगे न बढ़ सके।

हिन्दुस्तान के किसान भी इस लहर से बचे नहीं है। पञ्जाब के किसानों की बाबत माल्कम डार्लिङ्ग का कहना है कि "अब किसानों की आँखें धीरे-धीरे खुल रही है। वे अपने चारों तरफ देखने लगे हैं। उन्हें अब दुनियाँ दूसरी ही दिखाई देने लगी है। अब वे यह समझने लगे हैं कि उनकी गरीबी विधिना के अंकुर नहीं है जो मिटाए न जा सकें। उन्होंने जान लिया है कि दुनियाँ में हेर-फेर किया जा सकता है। अपनी हालत सुधारी जा सकती है। किसानों की जाग्रति के चिन्ह इतने स्पष्ट हैं कि इनके बारे में किसी प्रकार की गलती की गुञ्जायश ही नहीं है। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के बाद किसानों में एक नए भाव का उदय हुआ है। इस बात के अचूक प्रमाण हैं कि किसान अपनी नींद से जग रहे हैं।"

हिन्दुस्तान की आजादी का आन्दोलन वास्तव में किसानों का ही आन्दोलन है। हिन्दुस्तान का पूर्ण स्वतंत्र्य-संग्राम किसान राज-संग्राम है। नौकरशाही से महात्मा गांधी की पहली मुठभेड़ किसानों के सवाल को लेकर ही हुई। चम्पारन का संग्राम निलहे गोरों के अत्याचारों से वहाँ के किसानों को बचाने के लिए हुआ था। खेड़ा का संग्राम भी लगानबंदी किसानों को

कष्टसे बचाने का सफल प्रयत्न था। विश्व-विदित बारदोली संग्राम सर्वथा किसान-संग्राम था।

संयुक्तप्रान्त मे सन् १९२०-२१ मे जो महान किसान आन्दोलन हुए थे उनकी चर्चा की जा चुकी है। सीतापुर, हरदोई वगैरः के एका-आन्दोलन का नेता भी छेदा पासी—मामूली किसान था। यह कौन नहीं जानता कि प्रान्त के इन स्वतः प्रेरित और स्वतः सचालित किसान आन्दोलनो को यदि उनका नेतृत्व न मिल जाता तो उन्हे जो थोडी सी सफलता मिली उसमे कहीं अधिक सफलता उससे कम त्याग और हानि मे मिल जाती।

हिन्दुस्तान के किसान जग गये है। उनके जगने के साथ-साथ उनके भाग्य भी जग गये है। देश की सब से बड़ी तथा शक्तिशाली राष्ट्रीय संस्था कॉग्रेस ने किसानो के काम को अपना काम बना लिया है। महात्मा गांधी ने सन् १९३१ मे संयुक्तप्रान्त के किसानो और जमीदारो के लिए जो घोषणा निकाली थी उस मे उन्होने किसानों से कहा था कि "तुम्ही कॉग्रेस हो" और कौन नही जानता कि हिन्दुस्थान मे किसान कांग्रेस के है और कांग्रेस किसानो की।

सन् १९३२ मे कॉँग्रेस और सरकार से जो घमासान लड़ाई हुई थी वह किसानो की लड़ाई थी। किसानो के लगान की मुआफी के सवाल पर ही वह लड़ाई लड़ी गई। कॉंग्रेस का कहना था कि नाज का भाव गिर जाने से किसानो की पैदावार की कीमत [illegible] से भी कम रह गई है। साथ ही फसल को

और भी नुकसान पहुंचा है इसलिए किसानों का लगान हर हालत में आधे से ज्यादा मुआफ होना चाहिए, बकाया लगान की वजह से होने वाली किसानों की बेदखलियाँ ऐसी हैं कि विपत्ति के समय हट जानी चाहिए। जिनको बेदखल कर दिया गया है उनको उनके खेतों पर दखल वापस देना चाहिए। सरकार काँग्रेस से कहती थी कि तुम किसानों की हिमायत मत करो हम जो कुछ कर रहे हैं उससे ज्यादा कुछ नहीं करेंगे। इसी पर काँग्रेस ने सबसे ज्यादा मुसीबत सही, जिलों के किसानों से कहा कि लगान रोक लो। सरकार ने इसका जवाब आर्डीनेंसों से दिया और कांग्रेस से उसकी टक्कर होगई।

हिन्दुस्थान की सरकार भी यह समझ गई है कि किसान जग गये हैं। क्योंकि सरकार यह जानती थी कि किसान जग गये हैं इसलिये उसने संयुक्तप्रान्त में १९२१ में अवध-कानून लगान और १९२६ में आगरा कानून लगान बनाया और इन कानूनों पर बहस करते हुए तत्कालीन लेजिस्लेटिव कौंसिल में खुल्लमखुल्ला यह स्वीकार किया कि "अगर जगे हुए किसानों को कुछ भी अधिकार न दिए जायँगे तो अच्छा न होगा।" इसी बात को स्वीकार करके सरकार ने सन १९२० के बाद किसानों को जितनी मुआफी लगान दी उतनी पहले कभी नहीं दी थी।

सरकार यह भी जानती है कि किसानों में इतनी ताकत है कि अगर वे उसका ठीक इस्तेमाल करने लगें तो फिर कोई भी उनका मुकाबिला नहीं कर सकता! उस समय संयुक्तप्रान्त के गवर्नर सर विलियम मैरिस ने सन १९२४ में लखनऊ में एक

दरबार से कहा था कि किसानो ने अपनी ताक़त को पहचाना नहीं है। जिस दिन वे अपनी ताक़त को पहचान जायँगे उस दिन सरकार की बागडोर उनके हाथ में आ जायगी।

किसानों की यह प्रगति अब रुक नहीं सकती। वह उस वक्त तक हरगिज नहीं ठहर सकती जब तक कि अपने उद्देश को न प्राप्त कर ले। जो प्रचण्ड प्राकृतिक शक्तियाँ किसानो की इस प्रगति को प्रेरित कर रही है उनकी गति का अवरोध करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है।

जमीन बढ़ नहीं सकती। उसके बढ़ने की कोई सम्भावना भी नहीं हैं। परन्तु आबादी लगातार बढ़ती जा रही है। मर्दुम शुमारियो के आँकड़ों से यह स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि हिन्दुस्तान में अभी किसानो की आबादी शहरो की आबादी के मुकाबिले मे बढ़ रही है। स्पष्ट है कि आबादी बढ़ने पर जोते और भी छोटी हो जायँगी। जब मौजूदा जोतों से किसानो का गुजारा नहीं होता तब उनके और भी छोटी हो जाने पर हालत और भी बुरी हो जायगी। जोते छोटी होने की वजह से जमीन की पैदावार भी घटती जायगी। साथ ही रूस, अमेरिका, अर्जेन्टानियाँ, आस्ट्रेलिया वगैरः दूसरे देशो मे खेती की पैदावार बढ़ने की वजह से नाज का भाव सस्ता होता जायगा। फलतः किसानो का आन्दोलन दिन प्रति दिन प्रचण्ड से प्रचण्डतर और प्रचण्डतम होता जायगा।

अब तक के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि किसानों का भविष्य किसान-राज के ऊपर निर्भर है। संसार के दूसरे देशों

है कि मनुष्य हवा से अलग रह सकता है? किसान क्या संसार का कोई भी मनुष्य जो समाज में रहना चाहता है राजनीति से अलग नहीं रह सकता। जब तक मनुष्य समाज में रहता है तब तक यदि वह मूर्खतावश यह भी समझ ले कि मैंने राजनीति से सब सम्बन्ध छोड़ दिया तो भी राजनीति उससे अपना सम्बन्ध नहीं छोड़ेगी। हम चाहें या न चाहें, हम सभी को राजनीति में भाग लेना पड़ता है। प्रत्येक घण्टे हमें राजनैतिक व्यापार करने पड़ते हैं, फिर चाहे हम प्रसिद्ध जर्दान की तरह हर समय गद्य में बोलते हुए भी यह न जानते हों कि गद्य क्या है? हम जानें या न जानें प्रति दिन राजनैतिक रुख अख्तियार करने पड़ते हैं। अपने सर्वोच्च अर्थ में राजनीति ही जीवन है और जीवन राजनीति। प्रत्येक मनुष्य को कर्ता या द्रष्टा की हैसियत से इस जीवन-संघर्ष नाटक में भाग लेना पड़ता है। दूसरा कोई चारा ही नहीं है। आज-कल हमारा समस्त जीवन राजनीति के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

हमने यह देख लिया है कि प्राचीन परम्परा और संसार की भावी गति-विधि दोनों ही किसानों के पक्ष में हैं—किसान अपने कष्टों के महासागर को निस्सन्देह पार कर सकते हैं। हम यह भी सहज ही देख सकते हैं कि किसानों के संकट-मोचन की समस्या इतनी विकट और इतनी विशाल है कि उसके उलझनों की संख्या का ख्याल करके ही मन घबरा जाता है। यह भी स्पष्ट है कि वह साधारण, थोड़े और अव्यवस्थित प्रयत्नों से हल नहीं हो सकती। इसके लिए सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित चेष्टा — तथा [illegible] पर सब की सम्मिलित शक्ति से

उस योजना को कार्यान्वित करना अनिवार्यतः आवश्यक है। इतने महान कार्य को जाग्रत जन-बल के बूते ही किया जा सकता है। जन-शक्ति को जाग्रत और सङ्गठित करने का काम या तो राष्ट्रीय महसभा जैसी विशाल संगठन-सम्पन्न संस्था ही कर सकती है या राष्ट्रीय-सरकार अथवा किसानो की सरकार। कॉग्रेसी मंत्रि-मण्डल किसानों के संकट-मोचन की समस्या को जन-शक्ति को जाग्रत और संगठित करके ही हल कर सकते हैं। और जन-शक्ति को जाग्रत तथा सङ्गठित करने के लिए यह आवश्यक है कि इस महान कार्य को वर्त्तमान अधिकारियो और अहलकारों की बदबू से दूर रक्खा जाय क्योकि जब तक उसमें इनकी तनिक भी बू आवेगी तब तक उसे किसान जनता कदापि अपना नहीं समझेगी और जब तक जनता इस काम को स्वयं अपना नहीं समझेगी तब तक वह कभी पूरा नहीं हो सकता। संयुक्तप्रान्त के ग्राम-सुधार-विभाग के मन्त्री महोदय को अधिकारियों की अप्रसन्नता का जितना ध्यान था उसके बराबर भी ध्यान उन्हें इस समस्या के इन मूल-मन्त्रो की ओर होता तो वे लेखक की ग्राम-सुधार-योजना को, उस प्रकार निष्प्राण न कर देते जैसाकि उन्होंने अनजाने किया।

जो कोई भी सचाई और गंभीरता के साथ किसानो के संकट मोचन की समस्या को हल करना चाहते है उन्हे यह भी समझ लेना होगा कि इस समस्या के अलग-अलग टुकड़े नहीं किये जा सकते। समस्त समस्या को एक ऐसा विराट शरीर मान कर चलना होगा जिसके प्रत्येक अवयव का एक दूसरे से ऐन्द्रिक

सम्बन्ध है। किसानों के संकट-मोचन की समस्या केवल खेती की उन्नति की समस्या नहीं, न वह केवल किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने की समस्या है, वास्तव में वह किसानों की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक समस्या, उनकी जीवनोन्नति और समग्र जीवन के विकास की समस्या, उन्हें पशुवत् जीवन से उठाकर अपने असली दिव्य जीवन की ओर ले जाने की समस्या, शाही कमीशन के शब्दों में किसानों के जीवन का दृष्टिकोण बदलने की समस्या, ब्राइन साहब के शब्दोंमें ग्रामोत्थान की समस्या न होकर किसानोत्थान की समस्या है। हमारे देश के अर्थशास्त्र के आचार्य प्रो० पी० एन० वाडिया और के० टी० मर्चेण्ट ने अपनी 'हमारी आर्थिक समस्या' (Our Economic Problem) नामक पुस्तक की भूमिका में यह ठीक ही लिखा है कि हमारे देश का हित केवल उसकी आर्थिक संस्थाओं के सत्वकार्य-सञ्चालन मात्र पर ही निर्भर नहीं है। उसके लिये यह भी आवश्यक है कि हमारी सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का सुसम्बद्ध और समन्वयात्मक विकास हो। हमारी आर्थिक समस्या हमारी गरीबी की समस्या है लेकिन वह एक और अविभाज्य समस्या है, इसलिए उसका हल उसके अलग-अलग अङ्गों पर केन्द्रित कर के नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक अङ्ग का दूसरे अङ्गों से और पूर्ण शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है।

इस महान कार्य के लिये यह भी आवश्यक है कि देश के ...क व्यक्ति और उसकी प्रत्येक शक्ति से अनिवार्य रूप से काम

लिया जाय। यानी किसानो की भलाई के लिए काम करना हर-एक के लिए उसी प्रकार लाज़िमी है जैसे युद्धो के समय फौजों मे या युद्धोद्योगो मे।

यह युग योजनाओं का युग है। इसका प्रारम्भ रूस की पञ्च वर्षीय योजना से हुआ। उसके बाद अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने वहाँ के आर्थिक सङ्कट का सामना करने के लिए New Deal नाम की योजना चलाई। रूजवैल्ट के बाद हिटलर ने जर्मनी मे चार वर्ष की योजना से काम लिया। फिसड्डी ब्रिटेन ने अब सब के बाद सामाजिक सुरक्षा की योजना बनाई है जो वेवरिज योजना के नाम से प्रसिद्ध है।

हिन्दुस्तान मे योजना-पद्धति के पक्ष मे सबसे पहले सर एम. विश्वेश्वरय्ये ने अपनी जोरदार आवाज उठाई और पाश्चात्य देशों के ढङ्ग पर योजनाएँ बनाने पर जोर दिया। अब तो योजनाओं के सिद्धान्तादि पर प्रोफेसर के० टी० शाह और डाक्टर लोकनाथन प्रभृति की पठनीय पुस्तके उपलब्ध है।

राष्ट्रीय योजना तैयार करने की ओर अच्छा कदम उठाने का काम पहले पहल राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना (Planing) कमेटी ने किया। परन्तु सन् १९४० में वैयक्तिक सत्याग्रह छिड़ जाने के समय से इस कमेटी का काम अधूरा ही रह गया।

इन दिनो भारत-सरकार युद्धोत्तर पुनःसङ्गठन की योसनाओं का बहुत ढोल पीट रही है परन्तु जाहिर है कि इन ढोलों के अन्दर भारी पोल है। उनका उद्देश भारत का, भारत के निवा-

योजना मे ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नो पर कोई विचार नही किया गया है जैसे योजना के ध्येय को पूरा करने के लिए आवश्यक संगठन तथा किस प्रकार की क्रियाओ की आवश्यकता होगी। वितरण की समस्या को कैसे हल किया जायगा तथा देश की आर्थिक कार्यवाहियो पर सरकार का कितना नियन्त्रण होगा। योजना-निर्माताओ का कहना है कि इन समस्याओ पर अभी हम विचार कर रहे है। अपने विचार के परिणामो को दूसरी रिपोर्ट मे प्रकाशित करेगे। योजना प्रति व्यक्ति की आमदनी को दुगुना करना चाहती है। इसके लिए वह राष्ट्र की कुल आमदनी को तिगुना करेगी। क्योकि पन्द्रह साल में आबादी साढ़े सात करोड़ और बढ़ जायगी?

योजना-निर्माता यह मान कर चले हैं कि इस योजना की पूर्ति देश मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने पर ही हो सकती है। बम्बई-योजना की उपर्युक्त कमियाँ और आवश्यकताएँ पूरी भी हो जायँ तब भी समस्त योजना के सम्बन्ध मे यह प्रश्न रह ही जाता है कि उसका उद्देश केवल राष्ट्र की फी व्यक्ति आमदनी बढ़ा देना भर है और आङ्गल अर्थ शास्त्र के एक सुप्रसिद्ध आचार्य पीगू ने अपनी "लोकहित का अर्थशास्त्र" नामक प्रगाढ़ विद्वत्ता पूर्ण ग्रन्थ मे यह भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि राष्ट्रीय विभाग के आकार की वृद्धि-मात्र से राष्ट्र का हित हो ही यह निश्चित नही है, बल्कि कुछ दशाओ में राष्ट्र की आमदनी बढ़ जाने पर भी जनता की दृष्टि से कुल मिला कर राष्ट्रीय हित की हानि हो सकती है यदि

राष्ट्रीय विभाज्य का स्रोत (Chanele) उसका वितरण और उसका उपयोग ठीक-ठीक न हो। अर्थात् विशुद्ध अर्थ शास्त्र की दृष्टि से भी केवल आर्थिक उन्नति स्वतः वांछनीय उद्देश नहीं है। मानवी और सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि तो यह और भी अपूर्ण है। इसीलिए कांग्रेस राष्ट्रीय योजना कमेटी का कहना है कि "योजना में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का जीवन के मानवी पहलू का समावेश आवश्यक है।"

तात्पर्य यह कि कोई भी योजना बनाने से पहले हमें ऐसे योजना के उद्देश सम्बन्धी सिद्धान्तों को स्थिर कर लेना चाहिए। प्रोफेसर कोल का कहना है कि राष्ट्रीय उन्नति की योजना का उद्देश राष्ट्र के प्राप्य साधनों का पूरा पूरा उपयोग करके राष्ट्रीय आय बढ़ाना तथा उस आय का वितरण इस प्रकार करना है जिससे उस आय के उपयोग से ऐसे माप-दण्डों को बढ़ाया जाय जो सब में व्यापक हित के सब से अधिक अनुकूल हों।" इसमें राष्ट्रीय आय के स्रोत वाले आवश्यक पहलू को बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है और इसलिए कोल साहब का यह उद्देश कथन अपूर्ण है। इससे बेहतर उद्देश-कथन वह है जो प्रोफेसर आल्डस हक्सले ने अपनी 'साध्य और साधन' (End & Mean) नामक पुस्तक में दिया है। हमारी राय में अच्छी योजना वह है जो जिस समाज में लागू की जाय उसको उत्तरदायी तथा अनासक्त स्त्री-पुरुषों के स्वावलम्बी शान्तिमय तथा ऐच्छिक प्रगतिशील समाज में परिणत कर दे। आदर्श

सनथात सेन के राष्ट्रीयता, जीविका और लोकसेवा ये तीन सिद्धान्त भी किसान-राज योजना के पूर्ण आधार-स्तम्भ हो सकते है।

सिद्धान्तो के अलावा, किसी भी योजना के लिए यह आवश्यक है कि उसे बनाते समय देशकालावस्था का, देश-विदेश की वर्त्तमान परिस्थितिओ का, देश की प्रतिभा-परम्परा उसके इतिहास और उसकी मनोवृत्ति का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय। कोई भी व्यवस्था जब तक अवस्था के अनुसार न हो तब तक उसका सफल होना सम्भव नहीं। इस दृष्टि से देखे जाने पर इस समय तक जितनी योजनाएँ देश के सामने है उनमें श्रीमन्नारायण अग्रवाल की गान्धीवादी-योजना ही सर्वोत्तम है। उसमे पग-पग पर लेखक की सुविज्ञता-बहुज्ञता, अगाध विद्वत्ता और सिद्धान्त-पराग बुद्धि का परिचय मिलता है। अन्यथा लगभग सर्वाङ्ग पूर्ण इस योजना में अगर कुछ कमी है तो यह कि विद्वान लेखक को किसान-जीवन का जीवन-गत ज्ञान उसके छोटे से छोटे विस्तार (Detail) का ज्ञान जितना होना चाहिये उतना नहीं। उनका ज्ञान जितना व्यापक है उतना गहरा नहीं। और दूसरे यह कि उन्होने भी अपनी इस योजना में बम्बई-योजना की तरह किसान-राज के प्रश्न को राष्ट्रीय सरकार की आवश्यकता मात्र मान कर यो ही छोड़ दिया है, जब कि इस प्रकार की किसी भी योजना मे पूर्ण स्वराज्य की किसान-राज की योजना का सम्मिलित होना अनिवार्यतः आवश्यक है, अन्यथा योजना का अङ्ग-भङ्ग हो जाता है।

प्रत्येक योजना में मुख्य प्रश्न दो होते हैं—पहला यह कि हमारी वे आवश्यकताएँ क्या हैं जिन्हें हम पूरा करना चाहते हैं; दूसरा यह कि इनको पूरा करने के लिए हमारे पास क्या साधन हैं?

पहले प्रश्न का उत्तर किसानों की आवश्यकताओं का अन्दाज बहुत कुछ उनकी कष्ट-कथाओं से मिल जाता है। फिर भी उनकी आधार-भूत कम से कम आवश्यकताओं का उल्लेख होना चाहिये। यह आवश्यक है कि प्रत्येक किसान को, देश के प्रत्येक व्यक्ति को, भरपूर पोषक भोजन मिले, कोई भूखा तो दूर आवश्यक पोषण से वंचित भी न रहे। प्रत्येक किसान अर्थात् देश के प्रत्येक व्यक्ति के पास अपने शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक वस्त्र हों, कोई नङ्गा न रहे। प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले, कोई बेकार न रहे। प्रत्येक के पास रहने के लिए साफ-सुथरा, हवादार, स्वास्थ्य-प्रद गृह हो, कोई बे-घर न रहे। प्रत्येक गाँव में शिक्षा का प्रबन्ध हो, कोई निरक्षर तथा अशिक्षित न रहे। प्रत्येक गाँव में बीमारों के लिए दवा का समुचित प्रबन्ध हो, कोई बीमार बिना दवा-चिकित्सा और सेवा-सुश्रूषा के न रहे। प्रत्येक ग्राम में खेलों और निर्दोष विनोदों का समुचित प्रबन्ध हो तथा गाँव के रास्ते सड़कें वगैरः ठीक हों। समस्त देश की चौमुखी-स्वाधीनता तथा उस स्वाधीनता-रक्षा और आन्तरिक व्यवस्था का समुचित लोकतन्त्रीय प्रबन्ध हो।

इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमारे पास पर्याप्त ही नहीं प्रचुर साधन हैं। भारत-भूमि सुजला, सुफला सस्य-

शीतला और शस्य श्यामला है। वह रत्न-गर्भा और वीर प्रस-वेनी है। उसकी सन्निहित सम्भावनाएँ असीम है, अभी तक उनका ठीक-ठीक अनुमान ही नही लगाया जा सका है। जिन जर्मन सैनिको से रूस को छोड़कर बाकी संसार भर के सैनिक काँपते है, वे जर्मन सैनिक भारतीय सैनिको के सामने सर झुकाते हैं। भोजन, वस्त्र, घर, शिक्षा, चिकित्सा, संस्कृति आदि के मामले में भारत को किसी का मुँह नहीं ताकना है। इन सब बातों में वह पहले भी स्वयं पर्याप्त था, अब भी स्वयं पर्याप्त हो सकता है। सच पूछिये तो भारत की इन्ही खूबियो ने उसे दूसरों का गुलाम बनाया। इस सोने की चिड़िया के लालच से ही इस देश पर बार-बार इतने हमले किये गये। इन सब बातो में भारत संसार के समस्त अन्य देशो को जितना दे सकता है, उतना उसे उनसे लेना नही है यानी स्वतन्त्र भारत को किसी से भीख नही मांगनी, न उसे किसी का कर्जदार होने की जरूरत है। वह सम्मान-पूर्वक संसार के सब देशो के साथ परस्पर आदान-प्रदान करते हुए संसार मे सुख शान्ति और समृद्धि की वृद्धि कर सकता है। वह सुखमा की खान है। उसमें सब ऋतुएँ है। सब प्रकार के प्रदेश है। उसकी भूमि उपजाऊ है। उसके पथ साधन प्रचुर है। मनुष्य जाति का पाँचवाँ भाग और संसार के कुल पशु-धन का तिहाई हिस्सा हमारे देश मे। है यदि इस पशु-धन का ही पालन-पोषण हो तो दूध-दही की नदियों की पौराणिक कथाएँ आज भी प्रत्यक्ष हो सकती हैं। हमारा देश खनिज साधनो से भी पूर्णतया सम्पन्न है। छः हजार

सेनाओ मे तरह-तरह के धन्धो मे तथा खेती मे अब से करोड़ो अधिक आदमियो को रोजी मिल सकती है। हमारे देश के लोगों को जितने धन्धे, रोजगार मिल सकते है उनकी तरफ अभी तक लोगो का समुचित ध्यान नही गया।"

मनुष्य की सबसे पहली आवश्यकता पेट भर भोजन ही नही पुष्टिकर भोजन है। मनुष्य के पूर्ण स्वास्थ्य के लिये कितना और किस प्रकार का भोजन चाहिये, इस प्रश्न पर देश के विचारकों ने विचार किया है और कर रहे है। डाक्टर Sykroyat के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए, पन्द्रह औंस नाज, तीन औंस दाल, छः औंस हरी सब्जी, चार औंस हरी पत्तियो का साग, दो औंस तेल-घी, दो औंस फल, आठ औंस दूध चाहिये। बम्बई योजना में नाज एक औंस और तरकारियाँ चार औंस कम है। घी-तेल भी उन्होने आधा औंस कम रक्खा है। हमारी राय में डाक्टर साहब की भोजन सूची बहतर है लेकिन उसमें गुड़-शक्कर को भुला दिया गया है, इसलिए डाक्टर साहब वाली भोजन-सूची मे दो औंस गुड़-शक्कर मिला देने पर वह प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य और पुष्टि-कर भोजन को पूरी तथा अच्छी सूची बन जाती है।

देश की भोजन सम्बन्धी इस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए केवल यही पर्याप्त नही है कि खेती की पैदावार बढ़े परन्तु यह भी आवश्यक है कि खाद्य और पोषक नाजो की पर्याप्त मात्रा उगाई जाय और यदि इस उद्देश की पूर्त्ति के लिए आवश्यक हो

तो रुपये या व्यापार की फसल की व्यवस्था को कम कर दिया जाय या बिल्कुल ही बन्द कर दिया जाय।

फी व्यक्ति कपड़े की औसत लगाते समय सम्भवतः इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि यह आवश्यकता भिन्न-भिन्न प्रान्तों और प्रदेशों में वहाँ की जल-वायु के अनुसार भिन्न-भिन्न होगी।

हिन्दुस्तान में सन् १६३६-३७ में फी व्यक्ति सूती कपड़े की खपत सिर्फ साढ़े पन्द्रह गज साल थी। भोजन की तरह यह भी आवश्यकता से कहीं कम थी। काँग्रेस की राष्ट्रीय योजना-समिति ने प्रति व्यक्ति सूती कपड़े की वार्षिक आवश्यकता तीस गज मानी है। बम्बई योजना में यह औसत मुनासिब समझी गई है। श्रीमन्नारायण अग्रवाल का कहना है कि अगर कपड़ा साल भर तक टिक सके तो गाँवों के किसानों के लिए फी व्यक्ति बीस गज सूती कपड़ा आवश्यक होगा। परन्तु टिकाऊपन की कमी तथा बहतर जीवन माप-दण्डादि का ख्याल करके हमारी राय में सूती कपड़े की फी व्यक्ति सालाना आवश्यकता तीस गज ही मानी जानी चाहिये। १६२८-२६ में संसार भर की फी व्यक्ति सालाना सूती कपड़े की औसत च्यालीस गज थी। सूती कपड़े की औसत कीमत तीन आने गज मानी जाय तो यह छः रुपये साल का खर्च बैठेगा। देहात की कीमतों और सुविधाओं को ध्यान रखकर पोषक भोजन का व्यय फी व्यक्ति पांच रुपये माहवार यानी साठ रुपये साल बैठता है। मकान मरम्मत, दवा-दारू वगैरः अन्य फुटकर खर्च फी व्यक्ति आठ रुपये साल समझिये। इस तरह

देश के प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-सम्बन्धी आधारभूत आवश्यकताएँ, भोजन, वस्त्र, मकान चिकित्सादि की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि देश की आमदनी फी व्यक्ति कम से कम चौहत्तर रुपये साल हो।

इस समय देश की फी व्यक्ति सालाना आमदनी के अंदाज बहुत अलग अलग है।

बम्बई योजना ने हमारी राष्ट्रीय आय फी व्यक्ति पैसठ रुपये साल कूती है। हम बम्बई योजना के इस अङ्क को सही नही समझते है। एक तो योजना-निर्माताओ ने स्वयं यह माना है कि उस समय के सब अङ्क पर्याप्त और विश्वसनीय नही है। इसके अतिरिक्त यह औसत भी भ्रमात्मक और घातक है। इस औसत से केवल अङ्कगणित की दृष्टि से, हिसाब से औसत आमदनी के आँकड़े ठीक बैठ जाते है लेकिन यह हिसाब वैसा ही है जैसा "हिसाब ज्यो का त्यो कुनवा डूबा क्यो" वाली मशहूर कहावत मे था। कहावत यह है कि हिसाब-किताब और नाप-जोख मे विशेषज्ञ एक पटवारी अपने पूरे परिवार के साथ अपने गाँव से रिश्तेदारी के किसी दूसरे गाँव में जा रहा था। रास्ते में एक नदी पड़ी। वहाँ नाव थी नहीं। पटवारी ने नाप-जोख करके नदी के पानी की ठीक-ठीक औसत लम्बाई तो पानी कमर कमर से नीचा ही बैठता था। पटवारी ने निश्चिन्त होकर परिवार को पार जाने की आज्ञा दे दी लेकिन बीच नदी मे पहुंच कर सब का सब परिवार डूब गया। पटवारी को बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा कि कही हिसाब मे मुझ से भूल तो

नहीं हो गई। इसलिए हिसाब उसने फिर जाँचा और वह बिलकुल ठीक निकला। बेचारा पटवारी क्रोध और शोक से पागल होकर बार-बार यही पूछने लगा कि "हिसाब ज्यों का त्यों कुनबा डूबा क्यों?" वहाँ होकर जाते हुए एक पथिक किसान ने उसकी यह दयनीय दशा देख कर उसे समझाया कि मूर्ख औसत हिसाब तो ठीक है लेकिन औसत में बीच के गड्ढों का तो कोई पता नहीं चलता। यही बात इस पैंसठ रुपये साल वाली फी व्यक्ति की आमदनी के लिए लागू है। इस औसत से कुल राष्ट्रीय-विभाग को कुल जन-संख्या से भाग दे दिया गया है। अङ्कगणित बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह भुला दिया गया है कि वास्तव-जीवन में राष्ट्रीय विभाज्य बराबर-बराबर नहीं बँटा हुआ है। हिन्दुस्तान में एक फीसदी आबादी के पास राष्ट्रीय आमदनी का पैंतीस फीसदी हिस्सा है। बत्तीस फीसदी के पास सैंतीस फीसदी और बाकी सरसठ फीसदी के पास सिर्फ बत्तीस फीसदी।

मध्यप्रदेश में, सूबे के सब जिलों में छः सौ छः गाँवों की जाँच करके पता लगाने पर मालूम हुआ कि वहाँ की फी व्यक्ति सालाना आमदनी बारह रुपये साल के लगभग है। संयुक्त-प्रान्त में भी हम यह जानते हैं कि गाँव में जिस व्यक्ति को छः या आठ रुपये माहवार की नौकरी मिल जाती है वह खाना-पीना, हिल्ले से लगा हुआ माना जाता है। ऐसे व्यक्ति को अपने अलावा तीन-चार और व्यक्तियों का पालन-पोषण करना पड़ता

माहवार यानी अठारह रुपये साल बैठती है। हिन्दुस्तान भर के लिये अठारह-उन्नीस रुपये साल फी व्यक्ति सालाना आमदनी मानना ठीक होगा। उस दशा मे हमे देश के प्रत्येक व्यक्ति की जीवनावश्यकताओं को पूरा करने के लिए फी व्यक्ति आमदनी आज से चौगुनी करनी पड़ेगी क्योकि यह हम देख चुके है कि चौहत्तर रुपये साल से कम मे किसी व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकती। हमे पूरा विश्वास है कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को जीवनावश्यकताओ को पूरा करने के लिए जितनी आमदनी बढ़नी चाहिए उतनी आसानी से बढ़ सकती है। क्योकि राष्ट्रीय विभाज्य पॉच वर्ष में दुगुना भी हो गया तो वह फी व्यक्ति १२८ रुपये साल हो जायगा। केवल वृद्धि का बराबर बराबर वितरण किया जाय तो किसानो की फी व्यक्ति आमदनी ६४+१८=८२ रुपये साल हो जायगी।

किसानो की आमदनी बढ़ाने के लिए हमें दोनो दिशाओ में बराबर ध्यान देना होगा। एक ओर किसानो का शोषण बन्द करना होगा। दूसरी ओर उनकी आमदनी बढ़ानी होगी। बल्कि सही बात यह है कि आमदनी बढ़ाने से उस समय तक कोई लाभ नही जब तक कि उनके शोषण को बन्द न किया जाय, क्योकि जब तक शोषण जारी रहेगा तब तक किसानों की आमदनी चाहे जितनी बढ़ जाय वह उनके पास नही रहने पावेगी। किसानो की आमदनी रूपी हनूमान अपना कलेवर जितना बढ़ावेगे उससे दुगुना शोषण-सुरसा अपना बदन बढ़ा लेगी। हाल का विश्व व्यापी महायुद्ध हमारे इस कथन का

स्पष्ट उदाहरण है ? युद्ध के कारण नाज बहुत महँगे होगये। किसानों की आमदनी बढ़ी। वह उनके पास रहने पाती तो किसानों के बरसों पीछे के और बरसों आगे के कष्ट कट जाते। परन्तु वह उनके पास रहने कब पाई ? बकाया लगान के नाम पर, जमींदार करजे के नाम पर, बौहरे महँगी कीमतों के नाम पर, चोर मार्केट वाले तथा सरकारी अहलकार चन्दे करजे और रिश्वत के नाम पर उन पर टूट पड़े और उन बेचारों की आमदनी जसी आई वसी ही चली गई। करोड़ों रुपयों के युद्ध-करजे इकट्ठा करने और गवर्नरों को सोने से बराबर तोले जाने वाली कहानियों को कौन नहीं जानता ?

भारतीय ग्राम-अर्थ शास्त्र के समस्त विद्यार्थी भी यह जानते हैं कि रंगून, कलकत्ता, बम्बई वगैरः की नौकरियों और रोजगारों से किसानों की जो आमदनी बढ़ती है वह किसानों के घरवालों के पेट में न जाकर बौहरों और जमींदारों तथा अत्याचारियों की जेबों में जाती है।

इसीलिए हम यह कहते हैं कि किसानों की सङ्कट-मोचन की समस्या केवल कृषि और घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति की समस्या नहीं है, वह किसानों के उत्थान की समस्या है। शाही कृषि-कमीशन ने यह माना है कि "किसानों के बहुतर जिन्दगी

होना चाहिये कि जिससे किसानो के आत्म-सम्मान के भाव को तथा उनके स्वतंत्रता के मर्दाने भाव को धक्का न लगे।

मिस्टर ब्राइन का कहना है कि किसान सदैव भय का जीवन व्यतीत करता है। भूख और अकाल का भय, बीमारी और अदालत का भय, बौहरो का भय सदैव उन्हे सताता रहता है। हमारा काम उनके इन भयों को दूर करना है। शाही कमीशन के सामने ब्राइन साहब ने कहा था कि "किसानों को स्वस्थ और विवेक युक्त मानव जीवन बिताना सिखाने के मुक़ाबिले में खेती की तरक्की कोई मानी नही रखती। शाही कृषि कमीशन के सामने गवाही देते हुए महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कहा था कि "यदि भारत के किसानो को सुखी और समृद्ध बनाना है, जिस जीवन संग्राम में वे जकड़े हुए हैं उसमे काम-यावी हासिल करने के लिए अभी मदद करनी है तो उन्हे इस जीवन से कहीं अधिक अनुपम और आशामय तथा आर्थिक दृष्टि से बहतर "जिन्दगी बशर करने योग्य बनाना चाहिये जैसी कि वे आज बिताते हैं। उनमे मनुष्य-मात्र की प्रतिष्ठा का भाव आत्म-सम्मान और आत्मावलम्बन का भाव पैदा करना होगा। उन्हे यह सिखाना होगा कि वे जमींदार, पटवारी, अदा-लत और महक़मे माल वगैरः के सभी सरकारी अहलकारों के सामने अपनी आँखें नीची न करें। उन्हे यह सिखाना होगा कि उन्हे भी नागरिको के वे अधिकार प्राप्त है जो दूसरो को।"

कुमारी वीरा एन्सटी का यह कथन अक्षरशः सच है कि "जिस सरकार पर रिआया का पूरा विश्वास न हो और जिसे रिआया

की मदद न मिले वह किसानों के संकटों को दूर नहीं कर सकती। आडन साहब की भी यही राय है कि किसानों की भलाई का काम सरकारी अहलकारों के जरिये नहीं होना चाहिए। इङ्गलैण्ड की आजकल की और पुराने समय में खेती की तुलना करते हुए मिस्टर रौलैण्ड ने कहा है कि पुराने जमाने में किसानों का समाज में एक निश्चित स्थान था और वे स्वतन्त्र थे। अपने धन्धे में दक्षता, अनुभव और बुद्धिमानी के लिए उनकी इज्जत की जाती थी। उनके आचार विचार उनकी रुचियाँ तथा उनकी प्रकृति उच्च श्रेणी के लोगों से भिन्न न थी। लेकिन अब किसानों में यह भाव आ गया है कि हमें नीची निगाह से देखा जाता है। इसीलिए उनकी भलाई के जितने प्रयत्न किये जाते हैं उनका वह या तो मजाक उड़ाता है या उनसे बुरा मानता है। सफाई चिकित्सा इत्यादि के लिए जितने प्रबन्ध किये जाते हैं उन सब को वह यही समझता है कि बड़े आदमी हम गरीबों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, इसीलिए ये सब चोचले करते हैं।

संसार प्रसिद्ध उपन्यासकार काउन्ट टाल्सटाय ने अपने उपन्यासों में किसानों की उस सन्देह कहानी का बहुत ही सजीव चित्र खींचा है।

इन्हीं सब बातों के कारण किसानों के उत्थान का मुख्य प्रश्न उन्हें निर्भय बनाने, उनमें आशा तथा साहस का संचार करने, उनमें स्वावलम्बन तथा आत्मसम्मान का भाव जाग्रत करने की उनमें उन्नति की इच्छा और उसकी सम्भावना की आशा

उत्पन्न करने का सवाल है और यह सवाल किसानों के सन्देह को दूर करने के लिए गैर-सरकारी हाथो से ही होना चाहिये। इस मूल तत्व को हृदयङ्गम न कर सकने के कारण ही हमारे प्रान्त के ग्राम-सुधार विभाग के कॉग्रेसी मिनिस्टर महोदय ने बिना जाने, मेरी ग्राम सुधार योजना को सरकारी हाथो मे देकर उसे विफलता का अभिशाप दे दिया था।

किसानो का आर्थिक शोषण बन्द करने के लिए सब से पहली आवश्यक बात यह है कि किसानों को जमीन पर पूरा हक दे दिया जाय। चाहे कोई कुछ कहे, किसान न तो यह मानने के लिए तैयार है कि जमीन जमीदारों की है, न यही कि वह सरकार की है। गॉधी कहे या स्तालिन किसान, 'कृसासः पृथिवी पतिः' के वेद वाक्य को नहीं भूलेगे, नहीं भूलेगे, नहीं भूलेगे। इस मन्त्र को उनके मन से निकाल भगाने के लिए आप भारत में भी रूस की तरह लाखो किसानो को भले ही कत्ल कर दे। इसीलिए श्रीमन्नारायण अग्रवाल के इस सुझाव से हमे मौलिक विरोध है कि भूमि का राष्ट्रीयकरण हो। सब किसानो की एक ही पुकार "जो जोते सो जमीदार" हमारा यह नारा ही किसानो का जीवन नारा है। किसान-राज और किसानो की जमीन के दो पहियो पर ही किसानो की प्रगति का रथ नर को नारायण तक ले जायगा। हमे किसानो को अपनी जमीन का मालिक बनाना होगा। यदि हम यह काम नहीं करेगे तो लूईफिशर से महात्मा गांधी के कथनानुसार किसान स्वयं जमीदारों से अपनी जमीन ले लेगे, और जमीदार

अपने तथा अपने बाल-बच्चों की जान व इज्जत बचाने के लिए गाँवो से भाग कर हाथ के बजाय पैरो से किसानो के जमीदार होने के पक्ष में वोट देंगे। भारत की प्राचीन परम्परा जमीन पर किसानों के स्वामित्व को ही समर्थक है। समाज और जमीदार समय रहते चेत जायँ तो यह प्रश्न सब के लिये सरलता से सुलझ सकता है। जमीदारों के लिए धर्म्म क्षति-पूर्ति का, जीविका का, पारिवारिक जोत का, अन्य व्यवसायों का प्रबन्ध हो सकता है। उनका मान उनकी इज्जत और समाज में उनकी प्रतिष्ठा बच सकती है। यदि वे हवा के रुख को देख कर समस्या को सुलझाने में बाधक न होकर सहायक हो! जमीदारो को हर्जा देने न देने का सवाल व्यावहारिक राजनीति का सवाल है, नारों या कोरे सिद्धान्तों का नहीं। गृह-कलह, राष्ट्रीय शक्ति किसानों की शक्ति का अप-व्यय और खून खराबी बचे तो उसके लिए धर्म्म क्षति पूर्ति सर्वदा उचित होगी और यदि समाज तथा जमींदारों ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया तो संसार की कोई भी शक्ति किसानों को बड़े-बड़े जमीदारो की जमीन छीन कर उन्हें बाँट लेने से नहीं रोक सकती। इसीलिए हम इस बात के पक्ष में हैं कि राजा जमींदार और मार्क्सवादी सब अपने-अपने हठों को छोड़कर शान्तिपूर्वक कानून द्वारा, भूमि पर किसानो के स्वामित्व की होनी को मान लें।

लगान मौजावारी सामूहिक रूप से पंचायत के द्वारा वसूल किया जाना चाहिये। लगान की दर बहुत कम होनी चाहिये।

पूर्वनिश्चित फी व्यक्ति सालाना राष्ट्रीय आय कम से कम चौहत्तर रुपये मान कर और एक किसान-परिवार को औसतन चार व्यक्तियो का मान कर तथा मजूरी को, आमदनी को इस दो सौ छियानवे में से घटाकर कम से कम डेढ़सौ रुपये तक मुनाफे की प्रत्येक जोत को लगान से मुआफ करना होगा। यानी किसानो को जमीदार होने पर और मौजूदा जमीदारो की इस समय तक की सौ रुपये साल तक की मालगुजारी को, तात्पर्य यह कि जिन जोतों से किसान-परिवार का गुजारा नही होता उनको लगान मालगुजारी से बरी करना होगा। किसानो का वेदखली का तथा लगान अथवा मालगुजारी के मनमाने बाढ़ को भी स्थायी रूप से भगाना होगा।

जमीन की स्वामित्व की समस्या के बाद किसानो का शोषण रोकने की दूसरी समस्या किसानो को कर्जे से छुड़ाने की समस्या है। सैन्ट्रल बैङ्किङ्ग जॉच कमेटी ने मोटे तौर पर गॉवों मे कर्जे की तादाद नौ अरब कूती थी, १६३३ में रिजर्व बैङ्क ने अठारह अरब। तब से लेकर अब तक अवश्य ही उस मे कुछ हेर-फेर हुये होगे। लेकिन इन दिनो सब बातो पर विचार करके यही अनुमान सही मालूम होता है कि यह कर्जा बारह अरब होगा। इस दिशा मे कर्जा निपटाने वाले बोर्डों ने उपयोगी काम किया। उन्होंने आपस मे तस्फ़िया करने मे कर्जा एक तिहाई से लेकर आधा तक कम करा दिया। पंजाब मे वहाँ के किसान चालीस लाख के बजाय चौदह लाख कर्जा देकर बरी हो गये। यदि पंजाब को ही तरह देश भर मे हो जाय तो कर्जा स्वयं ही

बारह अरब में चार अरब के करीब तो वैसे ही रह जाय। इनमें से जो किसान कर्ज देने लायक ठहराया जाय उसे भी न दे सके तो रिज़र्व बैंक से कर्जा लेकर जमीन-बन्धक कर बैंक बोहरों का कर्जा चुका दे और किसानों से उसे छोटी-से-छोटी सालाना किस्तों में वसूल करले।

थोड़े से अध्ययन, उचित व्यवस्था और आवश्यक उपायों से काम लेने पर किसानों को कर्ज से आसानी से बरी किया जा सकता है। सब कर्जों की जाँच करके बेईमानी के कर्जे रद्द कर दिये जाँय। जिस कर्जे पर लगातार दस साल ब्याज मिल चुकी हो या मूल से दुगुना रुपया पहुँच चुका हो, वे भी रद्द कर दिये जाँय। किसानों पर जो कर्जा इन सब उपायों के बाद बचे उसमें भी जो किसान न अदा कर सकें उनका रुपया सरकार बॉन्ड जारी करके अदा कर दे तथा किसानों से बीस साल में छोटी-छोटी किस्तों में ले ले। किसानों को पुराने कर्जे से बरी करने के साथ साथ उनके लिए छ: फीसदी की ब्याज पर आवश्यक ऋण सरलता पूर्वक मिलने की पूरी पूरी व्यवस्था पञ्चायतों, सहयोग-समितियों, जमीन बन्धक बैंकों इत्यादि की मारफत होनी चाहिये।

थी। १६३१ मे पूरे पाँच की औसत थी। पाँच व्यक्ति फी घर मानने पर हर घर मे पाँच सौ वर्ग फीट रहने को चाहिये। बम्बई योजना का कहना है कि इतना बड़ा मकान प्रत्येक परिवार के लिए बनाने मे चार सौ रुपए गाँवो मे और आठ सौ कसबो मे लगेगे। इसके लिए साढ़े चौदह अरब रुपये चाहिए और इनकी मरम्मत के लिए ढाई अरब रुपये साल।

प्रान्तो के बनाव मे तथा घरो की बनावट मे स्वास्थ्य-सौन्दर्य की दृष्टि से कायापलट करने की आवश्यकता है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु हमारी राय मे गाँवों मे मकानो की समस्या उच्च कोटि की कदापि नही। जैसी यूरुप अमेरिकादि देशो में या भारत के शहरो में खास तौर पर मध्य वर्गीय लोगो और मजदूरो के लिए है। किसान-सरकार को गाँवो में सरकार की तरफ से मकान बनवाने की कोई आवश्यकता नही पड़ेगी। उसे केवल गाँव बसाने की और अच्छे घरो की सुन्दर योजनाएँ बनाने, इन योजनाओ के अनुसार नमूने के गाँव बसाने और घर बनाने तथा किसानो मे इनका प्रचार भर करने की आवश्यकता पड़ेगी। बाकी लकड़ी की थोड़ी सी दिक्कत को छोड़ कर जिसे आसानी से दूर किया जा सकता है। गाँवो मे प्रायः घर बनाने का सब सामान वही मिल सकता है और किसान स्वयं अपने स्वस्थ और सुन्दर घर और गाँव बना तथा बसा सकते है। जहाँ कही इस सम्बन्ध मे वास्तविक कठिनाई हो उसे गाँवो की पंचायते तथा मकान बनाने की सहयोग-समितियाँ पूरा कर सकती हैं। इन सब के

बाद किसान-सरकार के लिए कुछ करना बाकी भी रह जाय तो वह इतना नहीं होगा कि उसे इस योजना में स्थान दिया जाय। बम्बई-योजना में इस मद में साढ़े चौदह अरब रुपये का प्रबन्ध इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि योजना-निर्माताओं पर आम तौर पर पाश्चात्य अवस्थाओं का और खास तौर पर भारत की अवस्थाओं का बहुत अधिक प्रभाव है।

किसानों के लिए पोषक भोजन, काफी कपड़ा और स्वस्थ तथा सुन्दर घरों का प्रबन्ध होने के बाद उनके स्वास्थ्य, आरोग्यता, सफाई और चिकित्सा का सवाल आता है। उनमें सफाई, स्वास्थ्य और आरोग्यता के नियमों की शिक्षा का काम पंचायतों के जरिये डिस्ट्रिक्टबोर्डों को कराना चाहिए। गाँवों की पाठशालाओं में इन बातों की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। अध्यापकों के कर्त्तव्यों में इन बातों के ज्ञान और उनकी आवश्यकता का प्रचार भी होना चाहिए। गाँव के लोगों में खाद व कूड़े के लिए तथा पानी वगैरः के लिए गड्ढे खोदने की आदत डालनी चाहिए। गाँवों में खुले में पाखाना फिरने की, चूतड़ों की प्रदर्शिनी करने की, [illegible] तथा हानिकर कुप्रथा बन्द होनी चाहिए और उनको अपने खेतों में खाइयाँ खोद कर [illegible] लगानी चाहिए। इससे [illegible], खाद और सफाई दोनों का काम चल जायगा।

गाँवों में पीने के पानी का बहुत अधिक कष्ट है। इस सम्बन्ध में उन गरीब परिगणित जातियों को जो कुएँ [illegible] [illegible] जाती हैं इतनी तकलीफ रहता है कि जिन गाँवों में [illegible]

से भी उन्हे पानी नहीं भरने दिया जाता। हर गाँव मे पानी पीने के साफ कुएँ होने चाहिए तथा हर व्यक्ति को उनसे पानी लेने, पीने की सुविधा होनी चाहिए।

हर गाँव मे जच्चो और बच्चो की जान बचाने का पूरा-पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। हमारे देश मे हज़ार पैदा होने वाले बच्चो मे एक सौ सरसठ पैदा होते ही मर जाते हैं। उपयुक्त केन्द्रो में जच्चाखानो और बच्चा-खानो का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है। हर गाँव मे दवाखाना और सुविधाजनक हर ग्राम-समूह मे एक अस्पताल अवश्य होना चाहिए। चिकित्सा, यूनानी, आयुर्वेद और होमियोपैथिक पद्धति से होनी चाहिए। तथा सफल प्राकृतिक और रासायनिक नवीन पद्धतियो से भी काम लिया जाना चाहिये। दवाएँ सस्ती, सरल तथा कारगर होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे महात्मा गान्धी के आदेशानुसार घरेलू चिकित्सा पर जो पुस्तक तैयार हुई है—वह बहुत ही उपयोगी तथा बहुमूल्य है। उसमें एक आने मे एक हफ्ते तक कारगर दवाओं का प्रबन्ध किसानों के कल्याण के लिए राम-बाण है। इस दिशा मे तनिक भी उद्योग किया जाय तो चमत्कार-पूर्ण चिकित्सा-प्रणाली का विधान हो सकता है। इसमे ऐलोपैथी की समस्त अच्छी बातो को भी पूर्णतया समाविष्ट कर लिया गया है।

अब रहा गाँवो मे, शिक्षा का प्रबन्ध। १६११ की जन-गणना के अनुसार हमारे देश में अभी केवल सौ पीछे बारह व्यक्ति साक्षर है। हमें अभी अठासी फीसदी को साक्षर करना है। साक्षरता का प्रश्न केवल बच्चो को लिखना-पढ़ना तथा

हिसाब करना सिखाने का ही सवाल नहीं है, उसमे निरक्षर वयस्कों को साक्षर करने का प्रश्न सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त साक्षरता, शिक्षा का एक आवश्यक साधन अवश्य है, परन्तु वह शिक्षा नहीं है। अभी हमारे देश की सरकार किसानों को शिक्षा की कोई उपयोगी योजना तक नहीं बना पाई है। परन्तु महात्मा गान्धी के नेतृत्व मे वर्धा-शिक्षा-योजना के नाम से जो शिक्षा पद्धति प्रचारित तथा प्रचलित हुई है उसने इस कमी को पूरा कर दिया है। बेसिक शिक्षा से पहले बहुत छोटे बच्चो की शिक्षा की जो योजना गुजरात में आचार्य गिजूभाई ने सफलतापूर्वक बाल मन्दिरों द्वारा प्रचलित की है उससे किसान कुमारों की शिक्षा सम्बन्धी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जाती है। सात साल की बेसिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य होगी। शिक्षा-योजना में न केवल सिर्फ अंग्रेजी छोड़ कर और सब बातों का मैट्रिक तक का ज्ञान ही हो जाता है बल्कि उससे अर्थकर धन्धो की काफी अच्छी शिक्षा मिल जाती है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड की देख-रेख में इन स्कूलों का प्रबन्ध ग्राम-पञ्चायतों द्वारा होना चाहिए।

सैकिण्डरी शिक्षा मे आगे की फलामोशन सम्बन्धी शिक्षा तीन साल तक उन धन्धो मे दी जानी चाहिए जो बेसिक में सीखे गए हैं तथा विज्ञान की शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

आज-कल कालेजो की अधिकतर पढ़ाई बिल्कुल बेकार है। इन विश्वविद्यालयों में जो पौने दो लाख विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं, उनका समय स्वास्थ्य और रुपया व्यर्थ ही नष्ट होता है। ये कालेज विज्ञान तथा उन्नत कला-कौशल सम्बन्धी शिक्षा के

ज्ञान-प्रयोग और खोज के केन्द्र होने चाहिए। इनमे डाक्टरों, नर्सों, अध्यापको, इंजीनियरो और ग्राम-कार्यकर्त्ताओं इत्यादि की शिक्षा होनी चाहिए । शेष विषयो के लिऐ ऐसे सरकारी विश्वविद्यालय होने चाहिये जो स्वावलम्बी हों, जिनका खर्च उनकी फीस से चल जाता हो। तथा इन बातो के लिए ग़ैर-सरकारी दान पर चलने वाले कालेज होने चाहिये। सब जगह शिक्षा का माध्यम वहाँ के लोगो की मातृ-भाषा होनी चाहिए। वयस्कोको भी धन्धोंकी तथा स्वास्थ्य आरोग्यता, स्वच्छता, नागरिक अधिकार और सहयोग पर आधारित सामूहिक उद्योगो की शिक्षा दी जानी चाहिए। देशी रास, स्वॉग, नाटक, सामूहिक नृत्य, सामूहिक गानादि को पुनुरुज्जीवित करने के लिए सस्ता साहित्य होना चाहिये जिसमे जन गीतों, लोक'गीतो तथा लोक-साहित्य की मात्रा हो।

शिक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी व्यय वम्बई योजना ने क्रमशः-दोसौ सरसठ करोड़ तथा दोसौ इक्यासी करोड़ कूता है तथा श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने क्रमशः दोसौ पिचानवे और दो-सौ साठ करोड़। हम इन दोनो ही अङ्कों को सही नहीं मानते। पहले स्वास्थ्य को लीजिए। दोनो मे हर गाँव मे एक डाक्टर, एक या दो नर्स तथा एक मिडवाइफ की आवश्यकता बताई गई है। दोनो मे दवाखाने तथा मदरसे के लिए अलग अलग इमा-रतो का खर्च जोड़ा गया है। ऐसा करते हुए दोनो ने ही पाश्चात्य विचारधारा का अनुकरण किया है। हमारा विचार है कि गाँवों की दाइयो और धायो को आवश्यक शिक्षा भर देदी जाय और

इस शिक्षा में गाँवों में जो हजारों बरस के अनुभव पर आधारित ज्ञान बना हुआ है उसका पूरा उपयोग किया जाय तथा उसे बढ़ाया जाय तो यह काम कहीं अधिक जल्दी में और अधिक सफलतापूर्वक हो सकता है। इसी तरह इमारतों के सम्बन्ध में हमारा विचार है कि हर गांव में एक मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर कोई न कोई धर्म-स्थान अवश्य होता है। कहीं न हो तो बड़ी ही सरलतापूर्वक बनवाया जा सकता है—स्वयं गाँव वालों द्वारा। ये सब स्थान गाँवों के लिए, किसानों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, कला, संस्कृति और मनोरंजन तथा सात्विक जीवन के केन्द्र बनाये जा सकते हैं। हर गांव में प्रत्येक पुजारी, फकीर इत्यादि को हर फसल पर तथा दूसरे धार्मिक सामाजिक अवसरों पर उनके जीवन-निर्वाह के लिए काफी मिल जाता है। किसान और गाँव वाले इनसे धर्म और न्यायपूर्वक यह माँग कर सकते हैं कि ये लोग अपना धर्म पालें, गाँव और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन में लगें, मुफ्त न खायें, अधर्म न करें। ऐसा करने पर शिक्षक और चिकित्सक की, गाँव के सेवक और पथ-प्रदर्शक की समस्त आवश्यकता तुरन्त सहज ही पूरी हो जायगी और इमारतों का सवाल भी हल हो जायगा। पञ्चायत, पाठशाला,

भाव भी ज्यो-का-त्यो बना रहेगा। गॉवो के किसानों के पास पड़ी हुई इस असीम शक्ति की उपेक्षा करना या उसे वेकार जाने देना, विनष्ट होने देना परले सिरे की मूर्खता है। कसवों और शहरो मे भी इन साधनो से पूरा पूरा काम लिया जाना चाहिए। सामाजिक क्षमता-विज्ञान की यह मॉग है कि हम समाज के समस्त साधनो का पूरा पूरा उपयोग करे। सिखो का कुछ हद तक सफल गुरुद्वारा-सुधार-आन्दोलन इस दिशा में मार्ग-प्रदर्शन का काम कर ही रहा है।

गॉवो मे किसानो के लिए खेलों, अखाड़ों, विनोदों तथा साहित्य का प्रबन्ध भी अनिवार्य है। आजकल के गॉवो के गन्दे और नीरस जीवन से घबड़ा कर गॉवो के ही शिक्षित युवक गॉवो को छोड़ कर शहरो मे भाग जाते है। इसके अभाव मे गॉवो मे अपराधो की वृद्धि भी होती है। गॉवो का स्वास्थ्य सुधारने, उनका शारीरिक विकास करने, उनका मानसिक धरातल ऊँचा उठाने, उनमे सहयोग का भाव पैदा करने, उनके चरित्र का निर्माण करने, उनमे तरह-तरह की शिक्षाओ का प्रचार करने तथा उनका सामाजिक और सांस्कृतिक भाव वढ़ाने मे, एव उनके जीवन को सरस वनाने मे खेलो, अखाडों और विनोदो का उपयोग किया जा सकता है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड पंचायतो के जरिये इधर ध्यान दे तो परम्परागत देशी मेलो, खेलो, तीज-त्यौहारो, रास, स्वांग, खोइया, नाटक, होली, झूला-हिडोले, आल्हा, रसिया, मल्हार, ताल गीत आदि के रूप मे इतनी सामिग्री पड़ी है कि जिसके उपयोग से थोड़े ही समय

में इस सम्बन्ध में रूस से कहीं अधिक चमत्कारिक सफलता करके दिखाई जा सकती है।

किसानों के भोजन की समस्या को हल करने के लिए उनकी आमदनी तथा राष्ट्रीय आय और विभाज्य को बढ़ाने के लिए कृषि सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है और अभी हमारे देश में कृषि की उन्नति की बहुत गुञ्जाइश है। अभी तो ब्रिटिश भारत में पैंतीस फी सदी ऐसी जमीन पड़ी है जिसमें खेती की जा सकती है। प्रो० बाउली और रौबर्टसन (Bowley & Robertson) की राय है कि जमीन जोतने योग्य बनाई जा सकती है। संयुक्तप्रदेश अमेरिका में इस सुझाव का प्रयोग हो रहा है। सूखी खेती और धूलहीन खेती के प्रयोग भी आरम्भ हो गये हैं। हमारे देश में अभी जितनी जमीन पर खेती हो रही है उतनी ही जमीन पर उपयुक्त उन्नत साधनों से काम लिया जाय तो खेती की पैदावार निस्सन्देह दुगुनी हो सकती है। भारतीय अर्थशास्त्र के आचार्य डा० लोकनाथन ने अपनी Principles of Economic Planning में लिखा है कि वैज्ञानिक खाद और वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग कर हिन्दुस्तान में खेती की पैदावार दुगुनी बनाई जा सकती है। आरनोल्ड लप्टन साहब का कहना है कि वह चौगुनी हो सकती है। यह स्पष्ट है कि हमारे देश में फी बीघा पैदावार दूसरे देशों की फी बीघा पैदावार से कई गुनी कम है और कोई कारण नहीं है कि दूसरे देशों में जितनी फी बीघा पैदावार होती है उतनी हमारे देश में न हो।

सर जान रशल ने खेती की उन्नति के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए चार कारण जरूरी वताये हैं। (१) गाँव की आबादी का एक सा होना। (२) किसानो का साक्षर होना। (३) कृषि शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना तथा लोक हाई स्कूलो द्वारा लोगो में इस शिक्षा का तथा परस्पर सहयोग के भाव का प्रचार और संचार होना तथा (४) सहयोग-समितियो का उपयोग—विशेष कर व्यापारिक सहयोग-समितियों जो किसानो का माल खरीद कर बेचती रहे। ये चारों साधन किसान-राज में किसानों के लिए सहज ही उपलब्ध हो जायँगे।

देश मे खेती की व्यवस्था इस प्रकार भी हो सकती है कि बहुत हद तक देश के विभिन्न प्रदेश अपनी खाद्य और कच्चे माल सम्बन्धी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करलें जिसमें अकालों का भय भी कम होजाय, तथा यातायात के साधनो पर भी अत्यधिक भार न पड़े। इस उद्देश की पूर्त्ति के लिए व्यापारिक नाजों की खेती, इन आवश्यकताओ को पूरा करने के बाद ही की जानी चाहिये।

खेती सम्बन्धी खोज के सब काम का प्रवन्ध राष्ट्रीय-सरकार अथवा किसान-सरकार को करना होगा। बहतर बीज, बहतर औजार, चकवन्दी, अधिक फसलों, बहतर खादों, मूत्र, गोबर की खादें, कृत्रिम खादों तथा पाखाने की खाइयों के साधारण प्रयोगों से खेती की काफी उन्नति हो सकती है। भूमि को कटने से बचाना, नदियों मे, खारो में तथा ऊसर जमीनो में बबूल वगैरः मे जंगल जमाना इत्यादि भी आवश्यक होगा।

१६४३ के जंगलात में काम करने वालों की जो कांग्रेस देह-रादून में हुई थी उसका कहना था कि हिन्दुस्तान जंगलात की पैदावार के मामले में स्वयं पर्याप्त हो सकता है। जंगलात में बहुत से धन्धे चल सकते हैं, जैसे कागज का गूदा (Pulp) तरह-तरह के तेल, गोंद, रेसिन, रंग तथा तारपीन टर्पेन्टाइन वगैरः। किसानों में सामूहिक और सहयोगिक खेती का प्रचार भी खेती की उन्नति के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है।

खेती की उन्नति के लिए सिंचाई के साधनों का विस्तार भी अत्यन्त आवश्यक है। सिंचाई के अभाव में खेती वर्षा का जुआ मात्र रह जाती है। सन् १६३६-४० में भारत की सा चौबीस करोड़ एकड़ खेती में से सिर्फ पचपन करोड़ एकड़ में सिंचाई का प्रबन्ध था। इसमें से २६ करोड़ एकड़ की सिंचाई नहरों से, छ: की तालाबों से, साढ़े तरह की कुओं से और सा छः की अन्य साधनों से होती थी।

दिखाया है। उसका कहना है कि पचास गाँवो की डेरी आदर्श तथा आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद डेरी होती है। इन डेरियो के लिये अच्छे साँड़ खरीदना तथा सादी गौ-शालाएँ बनाना आवश्यक है। महात्मा गांधी की राय है कि डेरी मे भैंस के बजाय गाय का प्रयोग होना चाहिए। स्वास्थ्य की दृष्टि से तो गाय का घी-दूध, दही, मट्ठा बहतर होता है। कम खाने और जल्दी ब्याने तथा कम दिन तक सूखी रहने की बजह से कुल मिला कर अन्त में गाय भैंस से महँगी नहीं पड़ती। गाय के बछड़े भैंस के पड़ो से अधिक मूल्यवान भी होते है। ऐसी गाये मिल सकती हैं जो भैंस के बराबर दूध देती है। हाँ, गाय के दूध मे घी कुछ कम निकलता है परन्तु वह भी बढ़ाया जा सकता है।

हमारे देश मे हर साल एक करोड़ तीस लाख पशु मरते है। इनकी खाल को कमा कर उनसे चप्पल, जूते. सूटकेस वग़ैरः बहुत सी चीजे गाँवो मे बनाई जा सकती है। मरे पशुओ की खाल जीवित कटे पशुओं की पशुओ की खाल से बहतर होती है। मरे पशुओं के बालो, हड्डियो, सींगो, दातों, खुरों इत्यादि से भी तरह-तरह की चीजे बनाई जा सकती हैं। इन व्यवसायों से गो-शालाओ का उद्देश पूरा तथा सफल हो सकता है। गौ तथा अन्य पशुओ का कटना मिट नहीं सके तो घट अवश्य सकता है।

खेती की उन्नत्ति के साथ साथ ही वैज्ञानिक ढङ्ग से हरी तरकारियो की खेती तथा बागवानी का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

सहमत हैं कि किसानो का खेती का काम औसतन साल में आठ महीने से अधिक नहीं होता। इन आठ महीनो मे भी हमेशा नही होता, इसलिए देश के तीस करोड़ के ग़रीब किसानों की बेकारी को दूर करने के लिए घरेलू सहायक धन्धे अनिवार्यतः आवश्यक है। अब तक देश के किसान कताई, बुनाई, पिसाई, चावल कुटाई, टोकरी बुनाई, रेशम का काम वग़ैरः करते है। इन सब मे कताई सबसे ऊपर है। कही- कहीं किसानों की बहू-बेटियाँ बुनाई भी कर लेती है। कतकड़ो की औसत आमदनी आठ घण्टे की कताई पर दो आने से लेकर छः आने तक है। औसत छः रुपये माहवार। यानी कताई का धन्धा कताई-योजना की फी व्यक्ति सालाना आमदनी के राष्ट्रीय आदर्श को पूरा करता है! फिर भी इस देश में ऐसे समझदारो की कमी नहीं जो चरखे की उपयोगिता को कोसते-कोसते नही अघाते।

इन बेचारो को यह क्या मालूम कि हिन्दुस्तान के लिए जितने कपड़े की आवश्यकता है उसका आधा कपड़ा आज भी करघो से ही तैयार होता है और करघे के रुजगार से पचास लाख का गुजारा होता है। देश मे पिछले बीस साल मे करघे व्यवसाय मे तिगुनी वृद्धि हुई है। चरखे-करघे के विरोधियो को यह क्या मालूम कि आज भी खेती के बाद देश मे सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक फैला हुआ धन्धा करघो द्वारा कपड़ो की बुनाई का ही धन्धा है।

गुलजारीलाल नन्दा के कहने के मुताबिक हिन्दुस्तानी मिलें हर साल पचास करोड़ का कपड़ा तैयार करती हैं। इनमें से सिर्फ

दस करोड़ रुपया मजदूरों को मिलता है लेकिन अगर इतना ही कपड़ा खादी का हाथ का कता-बुना हो तो उसमें से पैंतीस करोड़ मजदूरों को मिलेगा। जितने कपास से मिलें पचास करोड़ रुपये का कपड़ा तैयार करती हैं उतने से खादी बुनाई जाय तो सौ करोड़ में बिकेगी और इसमें सत्तर करोड़ मजदूरों की जेब में जायगा। कपड़े की कीमत पचास करोड़ जरूर बढ़ गई लेकिन गरीबों को, मजदूरों को साठ करोड़ रुपया ज्यादा मिल गया। इस प्रकार सब तरह से खादी मिल के कपड़े से सस्ती पड़ी। फिर भी मजदूरों के हिमायती चरखे-करघे का, खादी का विरोध करते हैं।

बम्बई के उद्योग धन्धों के डाइरेक्टर आर० टी० बेल ने यह बात मानी है कि हाथ-करघे का धन्धा सीधे तौर पर मिल के कपड़े से प्रतिस्पर्धा नहीं करता। यानी मिल के कपड़े के अलावा इसकी अपनी निश्चित जगह है।

देश के अर्थशास्त्र के आचार्य वाडिया और मर्चेंट ने अपनी Our Economic Problem में ४६२ वें पृष्ठ पर लिखा है कि अखिल भारतीय चरखा-संघ की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे देश में न सिर्फ चरखे को बल्कि हाथ करघे के लिए भी निश्चित और सुरक्षित स्थान है।

इस महायुद्ध में खद्दर की माँग और भी बढ़ी और लोगों ने यह भी देखा कि खद्दर की कीमत उतनी नहीं बढ़ी जितनी मिल के कपड़े की। बिजली द्वारा बुनाई काम लेने लगे तो इसमें का रोजगार और भी फैल गया। इसका भविष्य सुन्दर है।

महात्मा गान्धी यह ठीक ही कहते है कि चरखा राष्ट्र का, किसानो का दूसरा फेंफड़ा है। इङ्गलैण्ड के जगत्-प्रसिद्ध उद्भट समाजवादी विद्वान् जी० डी० एम० कोल ने भी यह माना है कि खद्दर के लिए महात्मा गान्धी का उद्योग हिन्दुस्तान के किसानो की गरीबी को दूर करने का व्यावहारिक उद्योग है।

इसके अतिरिक्त चरखा और खद्दर केवल आर्थिक उपाय ही नहीं है, वह मानव-जीवन की अन्य सभी बातो का, मानव या मानवता का, मानव-सभ्यता और मानव की स्मृति का तथा मानव-सुख स्वाधीनता के सामजस्य का सुन्दर तथा सफल प्रयत्न है।

प्राचीन-काल मे खादी ने चमत्कारिक उन्नति की आज से चार हजार वरस पहले मिस्र की जो रक्षित लाशे वड़े-वड़े पिरेमिटो मे गड़ गई थीं उन्हे भारत की मलमल का सुन्दर कफन उढ़ाया गया था। वह आज भी वैसा ही चिकना बना हुआ है जैसा चार हजार वरस पहले था। कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में कताई बुनाई के व्यवसाय की, चरखा और खादी की बार-बार चर्चा की है। भारत का हाथ का कता-बुना

खादी तैयार की। इसकी तैयारी मे १३४५० गाँवो में दो लाख पिचहत्तर हज़ार कतकड़-बुनकरों ने काम किया, और चौंतीस लाख से ऊपर मजदूरी के मिले।

चरखे-खद्दर के जरिये किसानो की कपड़े की समस्या सहज ही हल हो सकती है। यदि एक गाँव की औसत आबादी पाँच सौ मान ली जाय और फी व्यक्ति बीस गज़ कपड़ा ज़रूरी माना जाय तो पन्द्रह हजार वर्ग गज़ कपड़ा चाहिये। यह साठ हजार गुण्डियाँ बनेगा। एक मामूली कतकड़ १६ काउण्ट की एक गुण्डी तीन घण्टे में मजे में औसतन कात सकता है। कुल गाँव को अठारह हजार घन्टे कातना पड़ेगा। पाँच सौ की आबादी में से एक चौथाई बच्चे वगैरः निकाल दिये जायं तो बाकी ३७५ स्त्री पुरुषों को साल में ४८० घन्टे कातना होगा यानी डेढ़ घण्टा प्रति दिन! इतना समय गांव की स्त्रियाँ ही सहज से निकाल सकती हैं। इस तरह गाँव की कपड़े की आवश्यकता पूरी हो गई इसके अलावा वैसिक स्कूलों के बच्चों और औरतों से दो घण्टे कताया जाय तो उस कताई की बचत से देश के समस्त शहरों की कपड़े की भी आवश्यकता पूरी हो सकती है। शहरों में मध्य वर्गीय लोगों की बेकार स्त्रियाँ भी आनन्द चरखा कात कर सम्मान के साथ अपना पेट पाल सकती हैं।

कागज बनाने के रोजगार का स्थान, घर, भोजन वस्त्र के बाद आज-कल की दुनिया में चौथा स्थान है। कागज कूटों, पर पड़े हुए कतरों के चिथड़ों, सैल्यूलाइट के खिलौनों से, नील के रंग से छूट की फेरन से,

चावल के भुसे से, बाँस, केले के खंभों, ईख के पतोई और कागजो के कुटे टुकड़ो तथा घास से बनाया जा सकता है।

कोल्हू से तेल पेरने का धन्धा भी अच्छा घरेलू धन्धा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से कोल्हू का तेल मिलो के तेल से अधिक पवित्र रहता है। उसमे विटैमिन अधिक होती है। यह बात वैज्ञानिक प्रयोगो से सिद्ध हो चुकी है। हाँ, मिलों का तेल कोल्हू के तेल से सस्ता जरूर है। परन्तु अब तक मिलें कोल्हू के तेल के व्यवसाय को नष्ट नही कर सकी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्रामोद्योग-संघ ने मगन-दीप—एक तरह की लाल्टैन का आविष्कार किया है जिसमें तिली या तीसी का तेल जलाया जा सकता है।

धान कूटने का काम भी अच्छा और स्वस्थ ग्रामोद्योग है। मिलो के कुटे चावल में से उसका खाद्य-मूल्य काफी कम हो जाता है। यह बात स्वयं भारत सरकार की सन् अट्ठाईस की स्वास्थ्य बुलेटिन ने स्वीकार की है।

ईख, खजूर, ताड़ी इत्यादि से गुड़ बनाना, मधु मक्खी पालना, लकड़ी का-बढ़ई का काम, लुहारी, सुनारी का काम दियासलाई बनाने का, मिट्टी के बर्तन बनाने, खिलौनो का चाकू, कैंची बनाने का, बाँस और बेत की चीजें बनाने तथा रस्सी वगैर. बनाने, ईंटें, टाइले इत्यादि तथा काँच और चूड़ियां का काम घरेलू धन्धों से अच्छी तरह हो सकता है।

अब तो विजली के बल पर चलने वाली छोटी-छोटी मशीनों

द्वारा कसबों और गाँवों में बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के वितरण और विकेन्द्रीकरण की ओर भी संसार के विचारशील अर्थ शास्त्रियों तथा समाज-शास्त्रियों का ध्यान जाने लगा है। इस महायुद्ध के कारण लोग घरेलू-धन्धों के महत्व को समझने लगे हैं। चीन की औद्योगिक सहयोग-समितियों ने इस दिशा में आदर्श और आश्चर्य-जनक उन्नति कर दिखाई है। यदि चीन ने इस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग न किया होता तो जापानी सेना और जापानी हवाई जहाजों ने चीन के समस्त विरोध की रीढ़ कभी की तोड़ दी होती। राष्ट्रीय स्वास्थ्य आर्थिक लोकतन्त्र हवाई जहाजों से बचाव तथा अन्य सामाजिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर अनेक अर्वाचीन प्रगतिशील समाज-शास्त्री घरेलू-धन्धों की, बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता प्रतिपादन करने लगे हैं।

किसान राज में ग्रामों के घरेलू धन्धों का पुनरुज्जीवन मुख्य कार्य-क्रम होगा। गाँवों के कारीगरों की मदद के लिए उन्हें कच्चा माल खरीदने और बने माल के रखने-रोकने के वास्ते सहयोग समितियों द्वारा सस्ते ऋणों का प्रबन्ध करना होगा. वैनिक पाठशालाओं तथा वयस्कों की कक्षाओं में उपयुक्त कला-कौशल की शिक्षा देनी होगी, घरेलू उद्योग-धन्धों के क्षेत्र के विस्तार तथा उनमें काम आने वाली मशीनों को उन्नत करने के लिए खोज का काम करना होगा तथा खोज के सफल प्रयोग किसानों को बताने होंगे। जो कच्चा माल गाँव में न मिले उसको सामूहिक

धन्धो के बने हुए माल की बचत के लिए बाजारों की सहयोग समितियो को सहायता करनी होगी। बड़े पैमाने के कारखानो मे बनने वाले माल की प्रतिस्पर्धा से घरेलू धन्धो को बचाना होगा, उनके लिये रेलो तथा जहाजो के किराये मे रियायत करनी होगी, जरूरत हो तो बड़े-बड़े कारखानो पर टैक्स लगाकर छोटे-छोटे घरेलू-धन्धो को सहायता देनी होगी। इन घरेलू धन्धो की वृद्धि और सफलता मे ही किसान राज और किसानों की सभ्यता का सारा रहस्य छिपा हुआ है।

गॉवो के किसानो के लिए आवागमन के मार्गों की, रेलो, सड़को, नदियो, समुद्र-तट के जहाजो, हवाई जहाजो, डाकखानो और तारघरो की सुविधा का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। देहातो मे ज्ञान, शिक्षा और संस्कृति के साधन सस्ते-पत्रो का पहुंचना सम्भव करने के लिए पाई पोष्टेज चलाना होगा। हिन्दुस्तान मे यहॉ के क्षेत्रफल के अनुपात से रेले कम हैं। जो है वह किसी व्यवस्था के अनुसार नहीं चलाई गई। गॉवो और किसानो के हितो तथा उनकी आवश्यकताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इन रेलों का मुख्य उद्देश्य हिन्दुस्तान मे ब्रिटिश शासन को सुरक्षित रखना तथा गॉवो का कच्चा माल खरीद कर और वहॉ अपना तैयार माल बेच कर ब्रिटिश व्यापार को बढ़ाना, भारत की लक्ष्मी को ब्रिटेन मे ले जाना रहा है। इसी उद्देश्य से इन रेलो के किराये भाड़े की दरे भी पक्षपातपूर्ण हैं। किसान-राज मे देश के कुछ हिस्सो मे रेलें बढ़ानी पड़ेंगी। राष्ट्रीय-सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों के स्वार्थों की अवहेलना

करके किसानों के हित में रेलों और उनकी किराये-भाड़े की नीति का नियन्त्रण करेगी। किसान-राज में रेलों का मुख्य उद्देश्य किसानों के घरेलू धन्धों की सहायता करना, उनके लिए सस्ते कच्चे माल का प्रबन्ध करना तथा उनके इन धन्धों के अतिरिक्त पैदावार को बेचना होगा। सड़कों की वर्तमान अवस्था नहीं रहेगी, जिसमें तीस फीसदी पक्की सड़कें और रेलें एक-दूसरे के समानान्तर चलती हैं। सड़कों के बनाने में गाँवों की सुविधा और आवश्यकता पर पूरा पूरा ध्यान दिया जायगा। ये सड़कें गाँवों के किसानों और कारीगरों के हित में बनाई जायँगी जिसमें उन्हें अपनी बचत बेचने और जरूरत की चीजें खरीद लाने की सहूलियत हो। बैलगाड़ियों की रक्षा के लिए कच्ची सड़कों का पूरा पूरा प्रबन्ध होगा। सब बड़े गाँवों में सड़कें होंगी। एक हजार की आबादी का कोई भी गाँव सड़क से एक मील से ज्यादा दूर न होगा। भारत के सोलह लाख बीस हजार वर्ग मील रकबे में सिर्फ ४१००० मील रेलें हैं। कम से कम इसकी चौथाई यानी दस हजार दो सौ मील और बढ़ानी होगी। सड़कें इस समय सिर्फ तीन लाख मील हैं। पिचहत्तर हजार मील पक्की और सवा दो लाख मील कच्ची। तीन लाख मील सड़कें और बनानी होंगी। नदियों द्वारा माल भेजने मँगाने के साधन की पूरी-पूरी सुविधा दी जायगी। रेलों के भाड़े की दरों को नदियों व नहरों की दरों से प्रतिस्पर्धा न करने दी जायगी। भारत के समुद्री तट के जहाजों के व्यापार में विदेशी निस्पर्धा को बन्द करना होगा और भारतीय कम्पनियों के

जहाजो को किसान-राज अपने हाथ मे ले लेगा। आवागमन के सब साधन, व्यापारी जहाज, व्यापारी हवाई जहाज इत्यादि सब राष्ट्रीय-सरकार के हाथ मे होगे।

किसान-राज मे लोगो के उपयोग की सब वस्तुएँ घरेलू उद्योग-धन्धो द्वारा तैयार होगी। विदेशी आक्रमण से स्वदेश की रक्षा करने के लिए शस्त्रास्त्र बनाने का उद्योग पूर्णतया किसान-सरकार के हाथ मे होगा। इसी तरह अन्य सब आधार-भूत तथा कुञ्जीवत धन्धे, वैयक्तिक न होकर राष्ट्रीय किसान-सरकार के अधीन होगे। बिजली का उपयोग इन धन्धो के अलावा खेती और घरेलू धन्धो में भी किया जायगा। आधार-भूत और कुञ्जीवत् धन्धे किसान-सरकार द्वारा ही चलाये जायँगे वही उनकी मालिक होगी। किसान-राज मे देशी-विदेशी पूँजीपतियो द्वारा सब प्रकार के शोषण का अन्त कर दिया जायगा। अब तक ऐसे जितने धन्धे व्यक्तिगत पूँजीपतियो के हाथ मे है उन सब को किसान-सरकार के हाथ मे लेने मे जितना रुपया लगेगा उतने संक्रांति काल में उन पर किसान-सरकार का घरेलू उद्योग-धन्धों और मजदूरो के हित मे नियन्त्रण रहेगा। ऐसे वैयक्तिक धन्धो की वृद्धि किसान-सरकार मे नही होने पायगी। ऐसी सब विदेशी फैक्टरियाँ किसान-राज द्वारा अपने हाथ मे ले ली जायँगी। संक्रान्ति काल मे लोगो की उपयोग की कुछ वस्तुएं बड़े पैमाने पर बड़े कारखानो मे बनती रहेगी जैसे सूती कपड़ा, तेल, शक्कर, कागज, चावल की मिले लेकिन वे किसानो के घरेलू धन्धों से प्रतिस्पर्धा नही करने पावेगी और जब ये घरेलू

धन्धे इन सब चीजों को खुद तैयार करने लगेंगे तब इनके बड़े कारखाने बन्द कर दिये जायेंगे।

लोकोपयोगी धन्धे जैसे यातायात और आवागमन के मार्ग, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, शिक्षा, बैंक, बीमा, अन्न-संग्रह या खोज का काम सरकार के हाथ में रहेगा। किसान-सरकार किसानों को अकालों, बाढ़ों, सूखा, पाले, खेती व पशुओं की बीमारियों इत्यादि से बचाने के लिए बीमे का पूरा-पूरा प्रबन्ध करेगी जैसा कि यूरप के कई देशों में है। यहाँ किसान जिन्स में बीमे की किश्त दे सकेंगे।

देश के आन्तरिक व्यापार को इस प्रकार व्यवस्थित किया जायगा जिससे कुल आबादी की अधिक से अधिक संख्या में अपने उपभोग की लगभग सभी वस्तुएँ अपने यहाँ ही मिलें। बीच के लोगों द्वारा शोषण का अन्त कर दिया जायगा। कीमतों पर पूरा नियन्त्रण रहेगा, वे स्थिर रहेंगी तथा यातायात के मार्गों पर कम से कम भार पड़ेगा। साधारणतः सात मील के रकबे के भीतर के सब गाँव मिल कर स्वयं पर्याप्त होने चाहियें, विशेष कर भोजन, वस्त्र और मकानादि सम्बन्धी आवश्यकताओं में।

भी स्वतः ही हल हो जायगी। राष्ट्रीय आय का वितरण, समान काम, समान दाम के सिद्धान्त पर होगा। इस योजना के अनुसार वितरण के इस सिद्धान्त पर व्यवहार अपने आप होता रहेगा। किराया लेने वाला वर्ग लुप्त हो जायगा। व्याज मुनाफे वगैरः की आर्थिक बुराइयाँ मिट जायँगी।

१६४१ की जन-गणना के अनुसार भारत में सौ पीछे सतासी आदमी गाँवो मे और केवल तेरह फीसदी शहरों मे रहते है। भारत भर मे कुल चालीस शहर ऐसे हैं जिन की आबादी एक लाख से अधिक है। किसान-राज मे धन्धो के विकेन्द्रीकरण तथा गाँवो के सुन्दर और सुखमय होने के कारण शहरों की आबादी और भी कम हो जायगी।

जो शहर है और रहेगे उनको सुन्दर सुखमय तथा स्वास्थ्यप्रद बनाया जायगा। लोगों के उपभोग की वस्तुएँ मुख्यतः गाँवों मे ही बनेगी, शहरो मे नही। शहरो के उद्योग-धन्धे गाँवो के घरेलू उद्योग-धन्धो के पूरक तथा सहायक होगे। शहर गाँवो की पैदावार की बिक्री के बाजार होंगे। शहरो के जीवन की आवश्यक वस्तुएँ अड़ौस-पड़ौस के गाँवों मे बनेगी। मतलब यह कि आन्तरिक व्यापार मुख्यतः देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की बचत की वस्तुओ के विनिमय का व्यापार रह जायगा जिसमे विनिमय करने वालो को परस्पर लाभ हो। ऐसी कुछ मशीनें, दवाएँ, शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी इत्यादि जो देश में नहीं बन सकेंगे, विदेशो से मँगाई जायँगी। जिन चीजों की किसी प्रदेश में कमी होगी और उन चीज़ों की वास्तव में जरूरत होगी तो बाहर से

मँगाई जायँगी। आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रण गांवों के हाथ में तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नियन्त्रण राष्ट्रीय किसान-सरकार के हाथों में होगा।

खेतों में, घरेलू धन्धों में, आधार-भूत तथा कुञ्जीवत धन्धों में, बड़े-बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के, सभी मजदूरों के हितों और अधिकारों की पूरी-पूरी रक्षा की जायगी। किसान राज में कानून द्वारा मजदूरों के लिए जीवन-मरण के लिए Living wage आवश्यक मजूरी की, काम करने की स्वस्थ अवस्थाओं की, काम के घण्टों की सीमा की, मजदूरों और कारखाने वालों के झगड़ों में निपटारे के लिए उपयुक्त व्यवस्था की, बुढ़ापे, बीमारी, दुर्घटना, बेकारी आदि में मजदूरों की रक्षा की, मजदूरों के लिए सब तरह के बीमे की तथा उनके मौलिक अधिकारों की पूरी पूरी गारण्टी होगी।

कर, राजस्व, प्रचलन और विनिमय का नियन्त्रण किसान-राज में इस प्रकार होगा जिससे गरीबों पर तथा उनके धन्धों पर कम से कम भार पड़े और आर्थिक विषमता दिन पर दिन दूर हो। किसान-राज द्वारा निर्धारित न्यूनतम आमदनी करों से बरी होगी। उससे आगे जैसे जैसे आमदनी बढ़ती जायगी करों की दर भी बढ़ती जायगी। प्रचलन और विनिमय का नियन्त्रण किसानों के, उनके धन्धों के तथा समाज राष्ट्र के हित में होगा। नमक-कर रद्द कर दिया जायगा। चिकित्सा के लिए छोड़ कर शराबों की बिक्री बन्द कर दी जायगी। निश्चित न्यूनतम आमदनी [illegible] की आमदनियों पर और [illegible]

लगेगा। नियत उचित न्यूनतम जमींदारी व जमीन की आमदनी से ऊपर कृषि-आय-कर लगेगा। खास तौर पर रक्खे गये विशेषज्ञो आदि को छोड़ कर किसी भी राज-कर्मचारी को पाँचसौ रुपये माहवार से अधिक वेतन नहीं मिलेगा। 'आजकल प्रचलन-प्रणाली इतनी जटिल और धूर्त्ततापूर्ण है कि बैङ्क आफ इङ्गलैंड के गवर्नर तक को यह कहना पड़ा कि यह मेरी समझ में नही आती। उसका नियन्त्रण इस प्रकार किया जायगा जिससे वह अधिक से अधिक सरल होजाय तथा चालाक सटोरियो के हाथ का खिलौना न रहे। गाँव के करीगरो, अध्यापको, डाक्टरों तथा उच्च अफसरों का वेतन जिस मे दिया जायगा जैसा गाँवो मे पंडितो, पुजारियो, फकीरो, कारीगरो इत्यादि के लिए हजारों बरस से होता आया है और अब तक होता है। प्रचलन के सम्बन्ध में गोपुरी (वर्धा) मे सूत का सिक्का चलाने का प्रयोग शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक है।

हमारे देश में आबादी की समस्या' अभी उतनी उग्र नही है जितनी यहाँ के शासक, राजनैतिक और कूटनैतिक कारणो से बताते हैं। देश के साधन इतने अधिक हैं कि वर्त्तमान साधनो के पूर्ण उपयोग से वह इस समय की दुगुनी आबादी तक का भरण-पोषण सानन्द किया जा सकता है। हाँ, फिर भी स्वास्थ्य आदि की दृष्टि से तथा वैयक्तिक और पारिवारिक दृष्टियो से सन्तान-निग्रह का प्रश्न तो है ही। उसका सर्वोत्ताम उपाय संयम और ब्रह्मचर्य है। अपवाद, -स्वरूप, आपत्ति। धर्म समझ कर विशेष अवस्थाओं मे नन

निग्रह के कृत्रिम परन्तु कारगर पाश्चात्य साधनों से काम लेना भी क्षम्य हो सकता है। आदर्श पर पूरा जोर देते हुए भी कठिन मामलों में व्यवहार के लिए अपवाद आवश्यक होंगे।

अब हमें इस किसानों की योजना के बजट को देखना चाहिये। प्रो० के० टी० शाह ने अपनी "ल्योनिन्न के सिद्धान्त" नामक पुस्तक मे लिखा है कि यदि ज़मींदारों से उनकी जमीन ले सालाना लगान का दस गुना हर्जा देकर किसानों को बाँट दी जाय तो दो अरब रुपये की आवश्यकता होगी। परन्तु चूँकि हमारी योजना मे जमीन के मालिक किसान होंगे, सरकार नहीं, इसलिए सरकार इस रकम के सालाना बॉण्ड जमींदारों के नाम जारी करदे और उसे बीस साल में किसानों से वसूल करले जो फी फसल चालीस किश्तों में किसानों को यह रुपया पाँच करोड़ साल के हिसाब से देना होगा। जिसे वे बहुत ही आसानी व खुशी से दे सकते हैं।

खेती की उन्नति के सम्बन्ध मे सरकार ने तीन रुपया फी एकड़ के हिसाब से एकसौ सत्तर पड़ती जमीन को जोत योग्य बनाने मे साढ़े तीन अरब खर्च करने होंगे और एक अरब भूमि की कटनी को रोकने में दोनों में ५-५ करोड़ साल का खर्च स्थायी होगा। सिचाई की सुविधा को दुगुना करने के लिए नहर तथा कुओं के प्रबन्ध के लिए २५ करोड़ रुपयों की जरूरत होगी। स्थायी सालाना खर्च पाँच करोड़। पाँच साल में पचास करोड़, प्रयोग और खोज के आदर्श कार्यों में खर्च होगा। इस तरह हर गाँव में खेती की उन्नति के लिए पचीस करोड़ साल

स्थायी खर्च होगा और चार हजार के हिसाव से ढाई अरब एक मुश्त खर्च की आवश्यकता होगी। इस प्रवन्ध से खेती की पैदावार पाँच साल मे तीन गुनी हो जायगी। इस हिसाव से खेती की उन्नति सम्बन्धी कुल खर्च एकमुश्त नौ अरव पचीस करोड़ होगा। सालाना स्थायी चालीस करोड़। खेती की उन्नति के लिए फी गॉव चार हजार के हिसाव से जो ढाई अरव खर्च कूता गया है वह किसानों से वीस साल मे दो सौ रुपये फी गाँव के हिसाव से फी साल वसूल हो सकता है। बचा कुल पौने सात अरव एक मुश्त तथा चालीस करोड़ स्थायी सालाना। यह भी उत्पादक खर्च होगा। ग्राम-उद्योगो घरेलू धन्धो की उन्नति के लिए नीचे लिखा खर्च चाहिए—

स्थायी सालाना	एक मुश्त
वाजार की सुविधा के लिए सस्ता कर्जा पॉच हजार फी गॉव मे पंचायतो या सहयोग-समितियो को वीस साल मे वापस	३५० करोड़ रुपया

आधार-भूत और कुञ्जीवत् तथा अन्य आधार-भूत धन्धों मे ७५० करोड़ रुपया लगा हुआ है। ३५० विदेशियों का, वाकी देशी ४४० में से दोसौ आधार-भूत धन्धो मे। किसान-सरकार इन सव को पॉच वरस में खरीदेगी। इसके लिए ५०० करोड़ रुपये की एकमुश्त जरूरत होगी। ५०० करोड़ आधारभूत तथा

रक्षा सम्बन्धी धन्धों की उन्नति में खर्च होंगे। कुल एक हज़ार करोड़ चाहिये।

दस हज़ार मील के करीब रेलें बढ़ाने में २०० करोड़ एकमुश्त तथा पाँच करोड़ सालाना स्थायी चाहिये। तीन लाख मील सड़कें बनाने को सौ करोड़ रुपया काफी होगा। सवा तीन हज़ार रुपया फी मील के हिसाब से। इनका स्थायी सालाना खर्च पाँच करोड़ होगा। मौजूदा जहाज़ी सुविधाओं के बढ़ाने में पचीस करोड़ तथा पाँच साल में व्यापारिक जहाज़ों का प्रबन्ध करने में ५० करोड़। दोनों का स्थायी खर्च। मुल्की हवाई जहाज़ों की व्यवस्थादि में कुल चारसौ करोड़ एक मुश्त तथा पचीस करोड़ सालाना स्थायी चाहिये। सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए गाँवों में प्रारंभिक चिकित्सक, नर्स-दाई आदि के प्रबन्ध के लिए २५ करोड़ चाहिये। इमारत गाँवों में ही मन्दिरादि में मिल जायँगी। शहरों में हर दस हज़ार व्यक्तियों के लिए एक अस्पताल के हिसाब से ५००० अस्पताल चाहिए। तीन हज़ार और बनाने होंगे। इन अस्पतालों की इमारतों में चालीस खाटों तथा दवाखानों का स्थान हो तो ५०००० रुपये फी अस्पताल खर्च होगा, कुल पन्द्रह करोड़। ५ करोड़ सालाना स्थायी खर्च होगा। तपेदिक, कोढ़, Cancer नासूर, योनि सम्बन्धी तथा मानसिक बीमारियों के अस्पतालों के लिए दस करोड़ और चाहिये। सफाई, पानी आदि के लिए पैंतीस करोड़, एक हज़ार फी गाँव के हिसाब से। इनकी संरक्षण का भार पंचायतें करेंगी। शहरों में पीने के पानी का

प्रबन्ध करने के लिए २५ करोड़ चाहिये यानी कुल एकसौ पचीस करोड़ एक मुश्त, तथा स्थायी सालाना ४० करोड़ ।

किसान-राज मे शिक्षा के लिए सातो साल तक पूरी बेसिक शिक्षा का एक स्कूल हर दो मील के अन्दर होना चाहिये। इनकी इमारते मन्दिर-मस्जिद के साथ बन सकती है । एक हजार रुपए मे । इसका आधा गॉव वाले मजदूरी के और जिस के रूप से खुशी से दे देगे। अतः इस मद मे कुल खर्च सिर्फ तेतीस करोड़ होगा । शहरो मे चौदह करोड़ इमारतो मे खर्च होगा । इन स्कूलो की प्रारम्भिक आवश्यकताओ के लिए बीस करोड़ चाहिए। कुल खर्चा इमारतो का सरसठ करोड़ हुआ। हिन्दुस्तानी तालीमी सङ्घ सेवा-ग्राम का अनुभव है कि इन पाठशालाओं मे बने माल से इनके शिक्षकों का दो तिहाई वेतन निकल आता है। एक तिहाई की पूर्ति सीधे आदि से बहुत आसानी से हो सकती है। शहरो मे एक तिहाई म्यूनिस्पैल्टियाँ देगीं। फिर भी प्रारम्भिक सहायता के लिए तेरह करोड रुपया रख लिया गया है।

सैकिन्डरी शिक्षा मे पचीस करोड़ इमारता को, पचीस करोड प्रारम्भिक सामान को। इनका स्थायी सालाना खर्च बीस करोड, वयस्क-शिक्षा के लिए चार रुपए प्रति वयस्क के हिसाव से पौने सत्रह करोड़, निरक्षर वयस्को की शिक्षा में सत्तर करोड़ होगा। इस सम्बन्ध मे बच्चो से ही अपने मा-बापों को शिक्षित करने मे सहायता ली जा सकती है जैसा कि चीन मे किया गया।

सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं की सेना की शिक्षा के लिए निन्यानवे करोड़ एक मुश्त तथा पचास करोड़ स्थायी सालाना चाहिये। इस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी कुल खर्च एक मुश्त २५ अरब—स्थायी सालना सौ करोड़।

खोज के काम के लिए बीस करोड़ की आवश्यकता होगी। कृषि-कर्त्ताओं की शिक्षा के लिए कला-कौशल सम्बन्धी शिक्षा विषयक खोज में काफी काम करना होगा।

इन सब मदों का सब खर्च मिला कर एक मुश्त तीन हजार पचपन करोड़ तथा स्थायी दो अरब सालना होगा।

यह खर्च केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में बँटेगा। इस खर्च का काफी हिस्सा उत्पादक है। कुछ तो किस्तों में वसूल होगा, कुछ आमदनी की वृद्धि के रूप में। अर्थात् हर हालत में यह खर्च वाञ्छनीय और सम्भव है।

जो धन्धे सरकारी हाथ में रहेगे उनमे लोकोपयोगी धन्धो से यातायात, सिंचाई इत्यादि से सरकार की आमदनी इतनी बढ़ जायगी कि वह स्थायी सालाना खर्च को सुगमता से चला सकेगी। सरकारी दान-संस्थाओं, धार्मिक-संस्थाओ, धर्मादे आदि का भी पूरा उपयोग कर सकते है।

सफल योजना ग्राम पंचायतों की अचल शिला पर टिकी हुई है। पंचायतो को अपने गाँव व गाँव के हित के लिए टैक्स लगाने का, लोगो के लिए ग्राम कार्य मे मजदूरी, रुपया या जिस के रूप मे टैक्स लगाने का पूरा हक़ होगा। प्राचीन काल में गाँवो के पुरुष ही नही स्त्रियाँ तक गाँवो मे तालाब, सड़क, बाग-बगीचे आदि मिल कर बनाने मे सहयोग देती थीं। कौटिल्य अर्थ-शास्त्र मे तथा बौद्ध कालीन भारत के इतिहास मे इन बातो का बहुत ही सुन्दर और प्रामाणिक वर्णन मिलता है। केवल इस सुप्त परम्परा को और सुषुप्त शक्ति को जगाने की जरूरत है। पञ्चायत फी हल फी फसल पाँच सेर चन्दा लगा दे तो वह मालामाल हो जाय और जो गाँववासी फकीरों वगैरः को इतना दे देते है वे पञ्चायत को बड़ी खुशी से देंगे। पण्डित, पुजारी, फकीरादि का निकालना रखना पूर्णतया पंचायतो के हाथ मे होना चाहिए। सजा के रूप मे भी पंचायतें जिस और मजदूरी गाँव भर के हित के लिए ले सकती है। विवाहादि उत्सवो पर पंचायते दान ले सकती है। तात्पर्य यह कि पंचायतो के पास ग्राम-हितकारी कामो के लिए वैसे भी साधनो की कमी नही रहेगी।

होगा। प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं मे सदस्य ग्राम पञ्चायत के सदस्यो द्वारा चुने जायँगे।

किसान-राज मे कार्यकारिणी पर जनता का नियन्त्रण और व्यवस्थापिका सभा का अंकुश होगा। न्यायकारी और कार्यकारी अधिकारी अलग अलग होगे। किसान-राज काल मे किसान-मजदूर-प्रजाराज होगा। प्रजा तो नब्बे फीसदी किसान है ही। बड़े कारखानो के मजदूरों की संख्या भी हमारे देश मे एक फीसदी से अधिक नही है। उनमे भी बहुत से किसान है और हृदय तो अधिकांश का किसान ही है। हाँ, किसान राज मजदूर पार्टी के नाम पर कम्यूनिस्ट पार्टी की डिक्टेटर शाही न होगी। किसान-राज का स्वरूप सङ्घीय होगा। उसकी बनावट और कार्यसञ्चालन लोक-तन्त्रीय। प्रत्येक वयस्क पुरुष के लिए अपनी व स्वदेश की रक्षा सम्बन्धी शिक्षा लेना अनिवार्य होगा। प्रत्येक को रक्षा सम्बन्धी शस्त्रास्त्र उपलब्ध होगे। किसान-राज की सेना समस्त किसानो की सेना जन-सेना होगी। स्त्रियो के लिए सैनिक-शिक्षा और सैनिक-सेवा वैकल्पिक होगी। इस योजना के अनुसार शोषण के लिए असम्भव देश की जो आर्थिक व्यवस्था तथा समस्त जन-बल पर आधारित ज्योत्स्ना-शक्ति होगी उसके कारण किसी को न तो हमारे देश पर आक्रमण करने का लालच ही होगा न साहस ही। और किसान-राज का भारत दूसरे देशो से सदैव मैत्री और सहयोग का सम्बन्ध रक्खेगा। वह मानव पार्लियामेण्ट और संसार-सङ्घ का समर्थक होगा। बोर्ड पञ्चायतो की और प्रान्त बोर्डो की देख-रेख करेगे।

जो पंचायतें तथा जो बोर्ड अपने कर्त्तव्य का पालन न करें उन्हें क्रमशः बोर्ड और प्रान्त नष्ट कर सकेगा परन्तु इसके लिए व्यवस्थापिका सभाओं की अपील सुननी पड़ेगी।

इस योजना को पूरा करने के लिए किसानों में स्वार्थ, स्वावलम्बन लोक-सेवा प्राणि-पूजा और अनुशासन का भाव पुनरुज्जीवित करना होगा। उन्हें बताना होगा कि स्वेच्छा-पूर्वक स्वीकृत अनुशासन स्वाधीनता की पहली शर्त है। उन्हें यह भी बताना होगा कि पारस्परिक सहयोग और स्वार्थ-त्याग-पत्र-भाव, जीवन की सफलता का रहस्य है। उन्हें याद दिलानी होगी कि हलुआ तो दूर रोटी खाने के लिए भी जमीन जोतनी बोनी, फसल बढ़ानी-रखानी और काटनी पड़ती है तथा नाज निकाल कर पीसना कूटना, आटा गूँथना, रोटी बेलना-सेंकना पड़ता है। श्रम और बलिदान के संसार का कोई काम नहीं चल सकता। बिना उनको अपनी असीम शक्ति की याद दिलानी होगी। उन्हें बताना होगा कि अपनी शक्ति को याद करने [illegible] कष्टों के महासागर को सहज लाँघ सकते हैं।

इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय दफ्तर के अलावा हर कमिश्नरी तथा हर जिले में एक-एक तथा हर सौ गाँवों के सङ्गठन के लिए एक पूरा समय देने वाले सेवा, प्रचार और संगठन, संचालन और निरीक्षण करने वाले सुशिक्षित कार्यकर्ता रखने होंगे। इन कार्यकर्ताओं का काम होगा कि प्रत्येक ग्राम में उपर्युक्त आर्थिक-योजना को [illegible] करने का प्रयत्न करने के अलावा प्रत्येक ग्राम के [illegible]

महिला-समिति, वानर-सेना, बिल्ली-दल, किसान-कुमार टोली यानी स्वयंसेवक-दल स्थापित करे जिनमे कम से कम दस-दस सदस्य और एक-एक नायक तथा उपनायक हो। फिर हर दस गाँव का एक ग्राम-समूह बना कर उनमे इसी प्रकार के ऐसे बीस-बीस स्वयंसेवको तथा एक-एक नायक व उपनायको का संगठन करे और यही मण्डल मे भी। प्रत्येक गाँव मे वाचनालय पुस्तकालय स्थापित करना भी उन्हीं का काम होगा। यह एक इनचार्ज कार्यकर्त्ताओ के कार्य क्षमता की न्यूनतम कसौटी होगी।

इतना संगठन होने पर अहिंसात्मक सत्याग्रह और असहयोग का अमोघ अस्त्र किसानो के हाथ मे है ही। किसान इस प्रकार एक ओर सङ्गठित हो जाय तो संसार की कोई भी शक्ति किसान-राज्य को नही रोक सकती। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति, संसार का लोक-मत, घटना-चक्र तथा प्रगति का प्रवाह भी किसान-राज के पक्ष मे है।

आवश्यकता केवल किसानो की नींद खोलने, उनकी जड़ता और उदासीनता को दूर करने की है। यदि अटल विश्वास रखने वाले अदम्य साहसी कार्यकर्त्ता हों तो वे कठिनाइयो के पहाड़ो को सेतुबन्ध रामेश्वर की तरह पुल बनाने के काम मे ला सकते है। और संशयात्माओ के बारे में ही किसानो के भगवान कृष्ण ने स्वयं यह कहा है कि वह नाश को प्राप्त होता है, उसको न सुख मिलता है न उसका लोक-परलोक सिद्ध होता है। गीता के अनुसार सब कार्यो की सिद्धि के लिए (१) शक्ति (अधिकरन) (२) कार्यकर्त्ता (कर्ता) (३) साधन (करण)

उन पर विश्वास प्राप्त होता है तथा हम उनके जीवन मे अपना जीवन मिला देते है। और नवजीवन की यह जाग्रत और सङ्गठित शक्ति इतनी प्रबल और प्रत्यक्ष हो जाती है कि उसके अस्तित्व-मात्र से विरोधी शक्तियाँ होनी को स्वीकार कर लेती है और सार्वजनिक अहिसात्मक सत्याग्रह के बिना भी किसान-राज की स्थापना सम्पन्न हो जाती है।

मुँह दर मुँह

इस एक दम नई और मौलिक सी परन्तु सर्वथा व्यावहारिक और कारगर योजना के सम्बन्ध में स्वभावतः पाठकों के मन में तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न हो सकते हैं। इसमें कुछ त्रुटियों का होना अवश्यम्भावी है। क्योंकि कोई भी मानव-योजना सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकती। परन्तु हमारा ध्रुव विश्वास है कि योजना को कार्यान्वित करने की प्रक्रिया में उससे प्राप्त अनुभव के आधार पर वे त्रुटियाँ अपने आप स्पष्ट और दूर होती जायँगी। स्वभाव से ही शक्की लोगों के सन्देह को न तो हम दूर कर ही सकते हैं, न उसका प्रयत्न ही करेंगे। कहावत है कि वहम की दवा लुकमान के पास भी नहीं है। परन्तु कुछ आपत्तियाँ और आलोचनाएँ ऐसी हैं जिनका उत्तर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

कहा जा सकता है कि यह योजना, किसान-राज की योजना होने के कारण, घरेलू उद्योग-धन्धों और ग्राम-स्वराज के पहियों से चलने के कारण प्रगति-विरोधी और प्रतिक्रिया वादी योजना है। यह विज्ञान के विरुद्ध है और वैज्ञानिक आविष्कारों के पूर्ण उपयोग से जो सुख-भोग उपलब्ध हो सकते हैं उनका बहिष्कार करती है।

इस आपत्ति का स्रोत पाश्चात्य सभ्यता की मानसिक दासता है। पाश्चात्य प्रगति के प्रबल-प्रवाह में हम [illegible]

की आँखे चौंधिया गई है। उनके लिए प्रगति और पाश्चात्य पर्यायवाची हो गये है तथा 'पाश्चात्य के मानी है प्रतिक्रियावादी। पाश्चात्य दर्शन, पाश्चात्य भौतिकवाद, पाश्चात्य विज्ञान, पाश्चात्य इतिहास और पाश्चात्य अर्थ-शास्त्र और पाश्चात्य समाज-शास्त्र इनके षड दर्शन है। इनका सबसे अधिक सङ्गठित और मुखरित सम्प्रदाय पूँजीवादी और मार्क्सवादी सम्प्रदाय है। पूँजीवादियो की आलोचनाओं को हम उनके उपयुक्त मनोभाव से उपेक्षा करके छोड़े देते है और मार्क्सवादी आलोचनाओ का ही यहाँ विचार करते है।

इस आलोचना के दो नमूने लीजिये। पहली आलोचना एक ऐसे महाशय की आलोचना है जिनके जीवन-सिद्धान्त दो ही मालूम होते है एक आत्म-विज्ञापन, दूसरा पूज्यो की अप्रतिष्ठा। 'वदनाम होंगे तो क्या नाम न होगा' और 'येनकेन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरुषो भवेत्' इनके मूल-मन्त्र है। इस दिग्विजय के लिए विश्व-वन्द्य महात्मा गांधी और भारतीय दर्शन-शास्त्र के जगत्प्रसिद्ध आचार्य सर राधाकृष्णन को ही नहीं वशिष्ठ, विश्वामित्रादि समस्त ऋषि-मुनियों और कालिदास प्रभृति कवि-कुल कमल-दिवाकरो को भी बुरी से बुरी गालियाँ देना, उन्हे पेटू, कामी, स्वार्थी और प्रगति-विरोधी बनाना इनका ब्रह्मास्त्र है। इनकी राय शरीफ मे जो कुछ रूसी है वही अच्छा है और कोई भी चीज जो रूसी नही महज इसलिये बुरी है क्योंकि वह रूसी नही है। यहाँ तक कि उन्हे जीवन-सङ्गिनी भी रूसी ही चाहिए। इनकी राय मे जब तक कोई दवा पाश्चात्य न हो, या जब दद्

उसमें गो-माँस और शूअर की चर्बी या मानव-यकृत या रक्त न हो तब तक वह दवा ही नहीं। फिर चाहे वह प्रयोग और अनुभव से कितनी ही सफल क्यों न हो।

इन महाशय की राय है कि "छोटे ग्राम-पञ्चायतों को तोड़े बिना बड़े शक्तिशाली प्रजातन्त्र की नींव नहीं रखी जा सकती। पूँजीवाद के असर से लोगों में साहस का अधिकाधिक प्रचार और प्रयोग होगा। गाँवों में बिखरे बेकार किसानों और कारीगरों को कारखानों में इकट्ठा किया जायगा।

एक उदाहरण लीजिये महात्मा गांधी ने भारत के करोड़ों किसानों की सस्ती और सफल चिकित्सा के प्रयोग अपने ऊपर किये क्योंकि जब तक पूर्ण स्वराज्य या सोवियत राज न हो तब तक वे लाखों गरीब किसानों को मक्खियों की मौत मरते देखकर भी हाथ पर हाथ रक्खे बैठे नहीं रहना चाहते थे। इन प्रयोगों में एक सफल प्रयोग गीली मिट्टी के लेप का प्रयोग था। इससे बहुत से लोगों को बहुत सी अवस्थाओं में प्रत्यक्ष और आश्चर्यजनक लाभ पहुँचा। परन्तु चूँकि यह प्रयोग रूसी अथवा पाश्चात्य नहीं था, चूँकि वह मार्क्स बाबा के वचनों में नहीं मिलता, इसके आविष्कारक गान्धी थे, इसीलिए इन्हीं प्रबल तार्किक और वैज्ञानिक कारणों के आधार पर हमारे पण्डित जी ने इस प्रयोग को "शुद्ध-मानव-नाश" करार दे दिया। वे यह भूल गये कि वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप भाँति-भाँति के [illegible] और घातक यन्त्रों ने सम्मिलित [illegible] नर-पशुओं द्वारा [illegible] के [illegible] देशों में [illegible]

मानवो के शोषण से जो चीत्कार और आज भी यूरुप के पश्चिमी और पूर्वी मोर्चे पर पाश्चात्य नर-राक्षसो द्वारा जिस नर-वेध का निनाद सुनाई दे रहा है उससे तो यह गुहा-मानव-नारा कहीं अच्छा है। वह मानव-नारा तो है फिर चाहे गुहा-मानव का ही क्यो न हो? अप्टन सिनक्लेयर द्वारा वर्णित शिकागो के पशुओं का पीड़ा-क्रन्दन केवल गगन-चुम्बी तथा सुविशाल कारखानो में रहने वाले पशुओ का क्रन्दन होने के कारण ही गुहा-मानव-नारो से अच्छा नही हो सकता। ये महाशय हमारे देश मे कम्यूनिस्ट-साम्यवादी विचार-धारा के प्रतीक हैं।

दूसरा उदाहरण बाबू जयप्रकाशनरायण का है। उनकी उत्कट देश-भक्ति तथा उनके त्याग और उनकी वीरता में मुझे तनिक भी सन्देह नही। परन्तु "कांग्रेस किधर" नामक पम्फलैट मे उन्होने ग्राम-स्वराज की निन्दा करके जिस मनोवृत्ति का परिचय दिया है उसका मै पूर्णतया विरोधी हूँ। उन्होने लिखा है कि—"गाँवो की स्वयं पर्याप्तता भारत की राजनैतिक अनैक्य का मुख्य कारण थी।" पृष्ठ १२। क्यो और कैसे यह बताने की उन्होने आवश्यकता नहीं समझी। कम से कम उस पम्फलैट में स्पष्ट है कि लेखक ने इकतालीस लाख के आधार पर गाँवों की स्वयं पर्याप्तता और भारत के राजनैतिक अनैक्य मे यह कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। जयप्रकाशनारायण जैसे व्यक्ति से ऐसी भूल होने का कारण यही हो सकता है कि उन्होने अमेरिका मे शिक्षा पाई है, जिसके परिणामस्वरूप उनके जीवन में वैबिलपनपन घर कर गया है। यदि उन्हें भारतीय-संस्कृति

भारतीय इतिहास, भारतीय-परम्परा, भारतीय-देशकालावस्था और भारत में प्रचलित स्वदेशी संस्थाओं, प्रणालियों और व्यवस्थाओं का तथा उनकी अन्तर्निहित शक्ति और सद्भावनाओं का गहरा ज्ञान होता तो वे ऐसा कदापि न कहते। हमें विश्वास है कि यदि वे विश्व के विकास तथा मानव-प्रगति और मानव-कल्याण, संसार में स्थायी सुख-शान्ति, लोकतन्त्र चौमुखी स्वाधीनता की स्थापना की दृष्टि से देखेंगे तो अपनी भूल स्वीकार कर लेंगे और हमारी ही तरह "सब शक्ति ग्रामों को मिले" इस नारे को मानने लगेंगे। जयप्रकाश बाबू समाजवादी मत के प्रतिनिधि हैं।

हमारी किसान-राज की योजना मौलिक है—यह भारत-भूमि में प्रस्फुटित हुई है। भारत की प्राचीन परम्परा, भारत की सभ्यता-संस्कृति, भारतीय-प्रतिभा, भारतीय-इतिहास, भारत की आवश्यकताओं और भारत की देश-कालावस्था से निकली है। भारत की भूमि से अंकुरित यह योजना भारतीय जलवायु में सहज ही बढ़ती जायगी। और किसी भी योजना के सफल होने के लिए उसमें इन गुणों का होना आवश्यक है। जान मैनार्ड ने अपनी "रूसी किसान" Russian Peasant & other Studies नामक ग्रन्थ प्रमाण परिपूर्ण अधिकारी पुस्तक तीसवें पृष्ठ पर लिखा है कि रूस की मीर की प्राचीन संस्था अर्वाचीन साम्यवाद जैसी सर्वांगी ही थी। मीर के सभी सदस्य [illegible] निश्चय रहते थे; रूस के किसानों का विश्वास था कि [illegible]

मीर ही किसानों को खेत बाँटती थी और आवश्यकतानुसार इस वँटवारे को बदलती रहती थी। फसल कब बोई जाय, इस बात का फैसला भी मीर करती थी। ग्राम-स्वराज के समस्त अधिकार मीर को प्राप्त थे।" स्पष्ट है कि यदि रूस में मीर की यह परम्परा न होती तो वहाँ सामूहिक खेती असम्भव हो जाती।

आर्थिक दृष्टिकोण से पहला आक्रमण घरेलू धन्धो पर होता है। कहा जाता है आथिक दृष्टि से अर्वाचीन काल मे वे अव्यवहार्य है। अब घरेलू धन्धो से काम लेना, प्रगति के प्रवाह को पलटना है यानी असम्भव काम है। ये घरेलू-धन्धे बड़े कारखानो के सामने टिक नहीं सकते। बड़े कारखानो से काम लिये बिना हमारा काम नही चल सकता। आइये हम इन दावो की जाँच करे। बंगाल की १६४० की भूमि-कर कमेटी का कहना है कि वहाँ जिन किसानो के पास काफी जमीन है उन्हे भी साल मे आठ नौ महीने प्रतिदिन कुछ समय बेकार रहना पड़ता है और इस समय का उपयोग करने के लिए उनके पास अतिरिक्त धन्धे नही है।

प्रोफेसर वाडिया और क्वेचटी-मर्चेण्ट जैसे भारतीय अर्थ-शास्त्र के आचार्यों का कहना है कि हिन्दुस्तान में लगभग बारह करोड़ व्यक्ति मजदूर है। इनमें से तीन करोड़ अस्सी लाख उद्योग-धन्धो मे लगे हुए है यानी एक तिहाई से भी कम। इनमे से भी बड़े कारखानो मे सिर्फ अस्सी लाख काम करते है। भारत का औद्योगी-करण बाकी नौ करोड़ को काम कहाँ

मे देंगे। "हमारी आर्थिक समस्या" नामक पुस्तक के एक सौ [illegible]
वें पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है कि "मशीन द्वारा बड़े पैमाने
पर माल तैयार करके हम खेती पर आबादी के भार को कम
नहीं कर सकेंगे।"

चरखे-करघे के पक्ष में दलीलें बताते हुए उन्होंने कहा है कि
इसमें पूँजी इतनी कम लगती है कि जो किसानों की पहुँच से
बाहर नहीं और देश में मजदूरों की कमी नहीं। ऐसी हालत में
ऐसे अतिरिक्त धन्धे को स्वावलम्बी क्यों न बनाया जाय? क्या
केवल इसलिए कि पश्चिम के अर्थशास्त्रियों ने अपने शास्त्रों [illegible]
के अर्थशास्त्र में इसके पक्ष में नहीं लिखा है। भारतीय अर्थ-
शास्त्री तो निश्चित रूप से यह कहते हैं कि चरखे-करघे के धन्धे
का भविष्य उज्ज्वल है। बहुत पहले [illegible] साहब ने यह कहा
था कि गरीब और असहाय औरतों के लिए चरखा ही एक मात्र
सहारा है। वाडिया और मर्चेंट साहब ने अपनी
[illegible] पुस्तक के ४८२ वें पृष्ठ पर लिखा है कि:—"हमें अपनी
यह मनमानी धारणा छोड़नी पड़ेगी कि बड़े पैमाने पर
माल तैयार करना "Mass Production" ही आर्थिक उन्नति
का एक मात्र तरीका है। [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कौन नहीं जानता कि औद्योगीकरण—पूँजीवाद से शोषण और बेकारी की वृद्धि हुई तथा उसके फलस्वरूप मनुष्य मशीन का एक पुर्जा, तोप से झोकने का कूड़ा मात्र रह गया! प्रोफेसर जी० डी० एच० कोल का कहना है कि मशीनो द्वारा उत्पादन-शक्ति की वृद्धि लोगो के सङ्कट और उनकी बेकारी का निश्चित कारण हो जाती है। प्रोफेसर हैरोल्ड लास्की ने अपनी, "यहाँ से किधर?" नामक पुस्तक में पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि पूँजीवादी देशों में लोकतन्त्र असम्भव है। और द्वन्दात्मक भौतिक प्रगतिवाद का जो नियम निस्सन्देह पश्चिम के औद्योगिक और शहरी देशो के लिए सही है, उसके अनुसार प्रगति के लिए पूँजीवाद के रौरव नरक और साम्राज्यवाद, फासिस्मवाद तथा कम्यूनिस्टपार्टी की तानाशाही आदि कुम्भीपाक नरको से गुजरना जरूरी है। श्रेणी, शासन और शोषणहीन समाज का स्वप्न जब सच्चा होगा तब होगा, सम्भव है, वह स्वप्न ही बना रहे परन्तु इतना निश्चित है कि आङ्गल अर्थशास्त्र पर आधारित मार्क्सवाद को मान लेने पर बड़े पैमाने पर बड़े-बड़े कारखानों में माल तैयार करने की बात मान लेने पर हमे शताब्दियो तक लोकतन्त्र को जलाञ्जलि दे देनी होगी। पूँजीवाद वैयक्तिक हो, चाहे सरकारी, और पहले तो वह वैयक्तिक होगा ही, सब पापों की जड़ है। पैसे का लोभ, पूँजीवाद का मुख्य सिद्धान्त होता है। सुविख्यात आङ्गल अर्थशास्त्राचार्य लार्ड कीन्स का कहना है कि पूँजीवाद के फलस्वरूप शोषण, उपनिवेश, स्थापन, साम्राज्यवाद, महायुद्ध और मनुष्यो के समूह के समूहों का [illegible]

सब विपत्तियाँ एक कड़ी में बँधी हुई जलूस बना कर आती हैं। बड़े पैमाने पर बड़े-बड़े कारखानों में माल तैयार करा कर पहले हम पूँजीपतियों को जनता का शोषण करने का स्वर्णावसर देते हैं और फिर उस शोषण का अन्त करने की चीख-पुकार करते हैं।

अर्वाचीन समाज-शास्त्रियों का कहना है कि समाज पर अब पूँजीपतियों का नहीं प्रबन्ध-कर्त्ता-वर्ग का प्रभुत्व है। विशेष कर आर्थिक-क्षेत्रों पर उत्पादन बड़े पैमाने पर लिमिटेड कम्पिनियों द्वारा ही हो सकता है। इन कम्पिनियों के शेयर होल्डर तो सुषुप्त भागीदार होते ही हैं, डायरेक्टरों का भी उतना प्रभाव नहीं होता जितना मैनेजिङ्ग एजेण्टों, प्रबन्ध-कर्त्ताओं का। फलतः शक्ति अब पूँजीपतियों के हाथ में नहीं, प्रबन्धकों के हाथ में है और बड़े पैमाने पर माल तैयार करने पर आर्थिक क्षेत्र में तथा किसी भी वर्ग की डिक्टेटरशाही होने पर राजनैतिक क्षेत्र में, नौकरशाही की संख्या और उसके प्रभाव में अमित वृद्धि होती है। इस प्रकार बड़े पैमाने पर माल तैयार करने की पद्धति से हम जनता की आर्थिक और राजनैतिक दासता की जड़ें मजबूत करते हैं। बर्नहम ने प्रबन्ध सम्बन्धी क्रान्ति (Managerial Revolution) में प्रबन्ध-कर्त्ताओं की शक्ति वृद्धि का सप्रमाण पूर्ण वर्णन और शास्त्रीय विवेचन किया है। सोवियत रूस का इतिहास इसका साक्षी है। वहाँ १९२० तक आर्थिक विषमता कम होने के बदले बढ़ रही थी। सोवियत रूस अत्यन्त शक्तिशाली हो गया है। उसकी [illegible]

हो चली है। वह ब्रिटेन जैसे सबसे बड़े साम्राज्यवादी और अमेरिका जैसी सबसे बड़े पूँजीवादी देश मे सैनिक-रक्षक दल बन गया है। वह त्रिगुट्ट का स्थायी और उत्साही सदस्य है। वह साम्यवादी साम्राज्य के रूप मे संसार के सामने आ रहा है।

केन्द्रीय नियन्त्रण और बड़े पैमाने की व्यवस्था से वैयक्तिक स्वाधीनता नष्ट हो जाती है और जिन लोगो के हाथो मे ये असीम अधिकार जाते है वे प्रभुता के मद से मत्त और भ्रष्ट हो जाते है। साम्यवाद और समाजवाद में उत्पादन के साधन राज के हाथ मे अवश्य होते है। परन्तु हम इस मुख्य बात को कैसे भुला सकते है कि राज भी किसी के हाथ मे होता है। इस प्रकार अन्ततोगत्वा उत्पादन के साधन भी वास्तव में उन्हीं के हाथो में होते हैं जिनके हाथो मे राज होता है। इसीलिए हम किसान-राज की शर्त को पहली शर्त मानते है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से भी केन्द्री-करण से विकेन्द्री-करण बहतर है। समाज की चित्तवृत्ति (Psychology of Society) की मीमांसा करते हुए प्रोफेसर जिन्सबर्ग ने विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया है। वास्तव में शान्ति, लोकतन्त्र और मानवी मूल्यो की प्रधानता, सादगी, विकेन्द्री-करण और घरेलू उद्योग-धन्धो से ही हो सकती है।

पाश्चात्य पूँजीवाद की प्रगति से चौंधियाए हुओं को एच० जी० वेल्स का एक पात्र "भावी की रूप-रेखा" (Shape of Things to Come) मे पूछता है कि यह सब प्रगति और

उन्नति है क्या? इन समस्त प्रगति और उन्नति से क्या लाभ है?

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक और राजनैतिक प्रतिस्पर्धाओं और धूर्तता तथा क्रूरता पूर्ण दाँव-पेचों की दृष्टि से देखिये तो भी आपको यह मालूम हो जायगा कि यदि हम मानव शक्ति के बूते पर अधिक से अधिक स्वावलम्बी नहीं होंगे तो हमें न केवल परमुखापेक्षी ही होना पड़ेगा बल्कि किसी न किसी की आर्थिक दासता की जञ्जीरों में जकड़ जाना पड़ेगा।

हमारे समस्त उद्योगों और प्रयत्नों का उद्देश स्वाधीनता के वायु-मण्डल में मानव व्यक्तित्व का विकास और unfoldment होना चाहिये। इसके लिए उद्योग धन्धों का सहकारीकरण और विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। बड़े पैमाने पर माल तय्यार करने से हमारे आराम और विलासिता में निस्सन्देह बहुत वृद्धि होगी। लेकिन ये आराम और भोग-विलास हमारी स्वाधीनता का सर्वनाश करके हमें उसी प्रकार फन्दे में जकड़ देंगे, जिस तरह मक्खी गुड़ में फँस जाती है।

मानव-विकास के लिए अनासक्त स्त्री-पुरुषों का न्याययुक्त तथा सुख शान्ति और स्वाधीनता मय समाज स्थापित करने के लिए उद्योग-धन्धों के विकेन्द्रीकरण का प्रतिपादन किया है। इङ्गलैंड के उद्भट समाजवादी विद्वान जी० डी० एच० कोल का भी यही कहना है कि आर्थिक लोकतन्त्र छोटे-छोटे घरेलू धन्धों में ही सम्भव हो सकता है। प्रो० हैरोल्ड लास्की ने भी अपनी The Modern State नामक पुस्तक के एक सौ एक वे पृष्ठ पर लिखा है कि लोकतन्त्र वास्तव मे उसी आबादी मे पैदा होकर पनप सकता है जिसमे व्यक्तियो के सम्मिलित शासन का योगफल होता है अर्थात् जिसमे प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने जीवन पर स्वयं राज करता है।

निःसन्देह बड़ी-बड़ी मशीनो से माल तैयार करने पर लोगो को अवकाश खूब मिलेगा। लेकिन क्या अवकाश की अति कोई अच्छी बात है? सप्ताह मे पॉच-छः प्रति दिन आठ घण्टे काम करके सोलह घण्टे रोज का अवकाश क्या कम अवकाश है? क्या आठ घण्टे से कम काम करने पर हम कोमल और आलसी नहीं हो जायेंगे? क्या शान्ति और आराम का कीड़ा होना कोई अच्छी चीज है? क्या दिन मे कम से कम आठ घण्टे का शारीरिक या मानसिक अथवा शारीरिक और मानसिक काम स्वतः अपने आप में आवश्यक और आनन्दप्रद नहीं है?

जार्ज बर्नार्डशा ने बुद्धिमती महिला के लिए समाजवाद और पूँजीवाद की पथ-प्रदर्शिका नाम्य पुस्तक मे यह ठीक ही लिखा

है कि हमें लम्बी छुट्टियों के जीवन से भी छुट्टी की जरूरत है। बेकार बैठे रहना अप्राकृतिक होता है, उससे मन ऊबने लगता है। बेकार धनिकों की दुनियाँ सबसे ज्यादा थकाने और सुस्ताने वाले निरन्तर, बेकार कार्यों की दुनियाँ है। शा ने अपने तर्गके पर नरक की परिभाषा करते हुए कहा है कि स्थायी छुट्टी ही नरक है। यह कौन नहीं जानता कि अवकाश पाने की समस्या उतनी कठिन नहीं है जितनी अवकाश में क्या करें, इसका उत्तर देने की समस्या पर्याप्त काम न रहने पर प्रायः मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक अधःपतन हो जाता है।

यदि आप यह जानना चाहते हैं कि बेकार धन-कुबेरों का जीवन कितना नीरस, अप्राकृतिक, दुःखमय और भ्रष्टता तथा पशुतापूर्ण होता है तो अप्टनसिनक्लेयर का The Metropolises नामक उपन्यास तथा उस विषय पर ऐसे ही अन्य ग्रन्थ पढ़िये। यह सभी जानते हैं कि आत्म-घात की संख्या सबसे अधिक बेकार धन-कुबेरों में ही होती है। बेचारे अपनी बेकारी की जिन्दगी से आजिज आकर उससे पीछा छुड़ाने के लिए आत्म-हत्या कर लेते हैं। जेलों में हमको स्वयं बेकारी की इस विकट समस्या का सामना करना पड़ा है।

अपनी इसी धर्म-दृष्टि से किसान-राज मे पैसे का मूल्य न होकर नैतिक और आदर्शो का मूल्य होगा।

औद्योगीकरण मे प्रधानता उत्पादन को दी जाती है, मनुष्य को नही। किसान-राज मे मनुष्य और उसकी आत्मा का प्रधान स्थान है, उत्पादन के समेत और सबकी उसके बाद।

जब हम द्वन्द्वात्मक प्रगतिवाद Dialectical Materialism के नाम पर यह प्रकृति का अटल नियम मान बैठते है कि बड़े पैमाने पर बड़ी-बड़ी मशीनो से, बड़े-बड़े कारखानो मे माल तैयार किये बिना उन्नति और प्रगति हो ही नहीं सकती। तब हम मार्क्स की ऐतिहासिक प्रक्रिया और ऐतिहासिक आवश्यकता के प्रति वैसी ही अन्ध-श्रद्धा प्रकट करते है, जैसी धर्मान्ध अपने-अपने धर्म की पोप-कथाओ पर। जार्ज सौरेल ने अपनी "हिंसा पर विचार" Reflections on Violence नामक पुस्तक मे ठीक ही कहा है कि मानवोन्नति का इतिहास एक पोप-कथा (Myth) की जगह दूसरी पोप-कथा की मूर्ति प्रतिष्ठा का इतिहास है। तीव्र तर्क, विमल विवेक, विशुद्ध विज्ञान, इतर इतिहास, द्वन्द्वात्मक प्रगतिवाद के सिद्धान्त मे कितनी ही कमियाँ क्यो न पावे, विकासवाद और आकर्षण-सिद्धान्तो मे भी त्रुटियाँ क्यो न पाई गई हो, उन्नीसवी सदी का भौतिकवाद स्वयं बीसवी सदी के भौतिक-विज्ञान द्वारा कितना ही सदोष क्यों न सिद्ध हुआ हो, द्वन्द्वात्मक भौतिक-वाद के सम्बन्ध मे मार्क्सवाद का वाक्य अन्तिम प्रमाण है।

कार्य-कारण के सम्बन्ध में ह्यूम की अकाट्य आलोचना के बाद, और स्वतन्त्र विचार को जलाञ्जलि देकर, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के बारे में यह भी मानने के लिए तैयार नहीं है कि किसी भी सिद्धान्त का अटल आवश्यकता होना विवेक के विरुद्ध है। अच्छे से अच्छा नियम और सिद्धान्त वास्तव (Fact) से सन्निहित एक सम्भावनामात्र है जिससे कुछ या कदाचित सब मानव-समाज की कुछ परिस्थितियों की व्याख्या हो सके। परन्तु मार्क्सवादियों की राय में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस भौतिक ऐतिहासिक सत्य का भी अपवाद है।

चाहे इतिहास भले ही यह पुकार-पुकार कर कहे कि मध्य-एशिया के जिन देशों या अरब की जिन जातियों ने दिग्विजय की जो भूखी नहीं थीं। उनके विस्फोट की जो शक्ति और उत्तेजित करने वाले कारण कल्पित विलासिता के स्वप्न और दीन थे, नकि अर्थ। परन्तु जो ऐतिहासिक तथ्य हमारे बाबा के सिद्धान्त से मेल न खाते हों उन्हें हम क्यों मानें ?

इतिहास और विश्लेषण सुन्दर और बहुत हद तक सही है। इसलिए उसके आधार पर की गई प्रगति की सब कल्पनाएँ अन्त मे सब वर्गों के नष्ट होने और सर्वहारा होने की तथा सर्वहाराओ की तानाशाही की कल्पनाएँ ही नहीं इस तानाशाही के पतझड और श्रेणी तथा शासन-हीन आदर्श समाज की कपोल कल्पनाएँ भी सत्य होगी। फिर चाहे उन्हे यह मालूम हो या न हो कि किसी सुदूर काल मे जब किसी गुजरते हुए तारे और सूरज मे दूसरी टक्कर होगी, महाप्रलय होगी, तब क्या होगा? इस पृथ्वी पर भावी-जीवन क्या होगा? मानवेतिहास का अतीत ही नहीं वर्तमान भी कितना ही अपूर्ण क्यों न हो हमे सदा अपने कल के निजी भविष्य का भी कोई पता भले ही न हो परन्तु हम मार्क्सवाद के नाम पर उसकी इन सब कपोल-कल्पनाओ को ध्रुव सत्य अवश्य मानेगे।

मानव-समाज की प्रगति के मुख-रुख पर विवेक-पूर्ण अटकल लगाने के लिये भी हमे उस समाज के समस्त अङ्गाङ्गो की क्रियाओ का ज्ञान होना चाहिए। जिन जीव-विज्ञान, शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान तथा अध्यात्म-विज्ञान अथवा विश्व-रहस्य सम्बन्धी जिन नियमो द्वारा मानव-समाज का संचालन होता है उनका सम्पूर्ण ज्ञान हमे होना चाहिए।

मौलिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आश्रित सामाजिक घात-प्रतिघात भी हमे मालूम होने चाहिये अर्थात् समस्त सहायक विज्ञानो समेत समाज-विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। परन्तु अभी तो इन सब विज्ञानों का ही पूर्ण विकास

नहीं हो पाया है. अभी तो उनके मौलिक सिद्धान्तों के बारे में इन विज्ञानों के आचार्यों में आपस में भारी मत-भेद है और इन समस्त विज्ञानों का जैसा और जितना विकास हो पाया है उसका सम्पूर्ण ज्ञान भी किसी एक मनुष्य के लिए सम्भव नहीं और उसका समुच्चय विश्लेषणात्मक पश्चिमी जगत ने अभी किया ही नहीं। फिर भी हम बड़े विश्वास के साथ अपनी सतर्क कल्पना को इतिहास की अनिवार्य आवश्यकता बताने लगते हैं।

हम यह भूल जाते हैं कि भारत में बड़े पैमाने पर माल तैयार करने की, उसके उद्योगीकरण की, उसमें वैयक्तिक या सरकारी पूँजीवाद का प्रवेश करने की कोई ऐतिहासिक आवश्यकता नहीं है। इस समय जब कि समस्त संसार में हमें एक नवल तथा निरन्तर बदलने वाली स्थिति का सामना करना पड़ रहा है तब हम सूखे और मोटे सिद्धान्तों से काम नहीं ले सकते। सदैव भविष्यता पर, तुरन्त सफलता पर ध्यान रख कर काम करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है।

एक Character चरित्र होता है। यह चरित्र उस प्रतिघात से निर्मित होता है जो उस युग की जन-संख्या पर कुछ भौतिक घटनाओं का होता है जो उन्हे उनके जीवन-मरण से मिलती हैं। और जन-संख्या की अपने युग की भौतिक घटनाओं के प्रति यह प्रतिक्रिया उस जन-संख्या के आधार भूत विश्वासो से उनकी आशाओं, उनके भयो और मूल्यो के सम्बन्धो मे उनके निर्णयों से नियत होती है।

इस दृष्टि से किसान-राज की घरेलू-धन्धो की यह योजना सर्वथा देशकालावस्था के युग की माँग के अनुकूल है। संसार के अन्य शास्त्रो के साथ-साथ बीसवी सदी के पिछले चालीस वर्षो मे अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तो मे भी काफी हेर-फेर हुआ है और अपने को प्रगति-शील और अपटूडेट कहने वाले मार्क्स-वादी अभी उन्नीसवी सदी के मार्क्सवाद को ही लिए बैठे हैं। उन्हे यह नही मालूम कि शहर की वृद्धि के, लगभग सब कारण, सभ्यता की, विज्ञान के आविष्कारों की नई वृद्धि की वजह से दूर हो गये है।

किसी भी कार्य का निर्णय करने से पहले हम इन प्रश्नो से नही भाग सकते कि वह कार्य कितना, किस अनुपात में तथा दूसरी बातो से उसकी व्यवस्था के किस नमूने में किया जाय ? सभी जानते हैं कि रासायनिक द्रव्यो के ठीक अनुपात के नियमों पर ही किसी भी चीज का बनना-बिगड़ना निर्भर रहता है। सी-ओ का प्रयोग करने पर हम मौत के मुँह में चले जायँगे परन्तु सी-ओ-टू का प्रयोग करने से स्वास्थ्य-सुख लाभ करेंगे।

यदि हम यह याद रक्खें कि वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों ही प्रकार की विचार-प्रणालियाँ (System) बदलती रहती हैं। प्रत्येक विचार-धारा की समझ सीमित होती है और अन्त में उसकी शक्ति चुक जाती है। अपने यौवन-काल में प्रत्येक विचार-धारा विजय और सफलता प्राप्त करती है। परन्तु जब उसका ह्रास आरम्भ होता है तब वह विनाशक सुसीबत हो जाती है, तो हम मार्क्सवाद को जड़-धार्मिक कर्म-काण्ड का रूप देने की गलती न करें।

किसी भी कार्य-क्रम की आलोचना का श्रीगणेश इस प्रश्न से नहीं हो सकता कि यह सत्य है या मिथ्या। परन्तु इस आधार पर होना चाहिये कि उसका लाभप्रद उपयोग हो सकता है या नहीं। यदि उपयोग में लाने पर वह लाभप्रद सिद्ध न हो तो विफल माना जाना चाहिये।

कारण मनुष्यो का बायकाट करते हैं। उद्योगी-करण और मार्क्सवाद दोनो में मशीनें मनुष्यो का ही नहीं देवताओ का स्थान ले लेती है। फिर चाहे उस देवता का नाम इन्द्र और सूर्य के बदले विजली और ट्रैक्टर हो क्यो न हो? देवी-देवताओं के पण्डे-पुजारियो की ही तरह मशीन-मैन आदि होते है। उद्योगी-करण और मार्क्सवाद मे मशीनों के मालिको और उनके विशेषज्ञो का महत्व इतना बढ़ जाता है कि इङ्गलैंड और अमेरिका मे वे लोकतन्त्र को अपनी लौंडी बना लेते है और सोवियत रूस में मार्क्सवाद को अपना मेंम था। संक्षेप मे हमे धार्मिक और आध्यात्मिक अन्ध-विश्वासो से ही नही भौतिक और वैज्ञानिक अन्ध-विश्वासो से भी मुक्त होना है। स्वतंत्र विचार की आवश्यकता दोनो ओर है।

किसान-राज की हमारी योजना के विरुद्ध दूसरा आक्षेप अहिंसा के सम्बन्ध में हो सकता है। कहा जा सकता है कि शासक और शोपक वर्ग को, ब्रिटिश साम्राज्यशाही और काले-गोरे दोनो प्रकार के पूँजीपतियों को अहिंसा के द्वारा पदच्युत करने के स्वप्न देखना आकाश-कुसुम के समान है। इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक जोरदार दलीले ये दी जाती हैं कि यदि आप पार्लियामेंटरी पद्धति द्वारा अथवा अहिंसा द्वारा शोपक और शासक वर्ग को इनके विशेषाधिकारों से रहित करेंगे तो ये हिंसा से काम लेंगे। दूसरी यह कि इतिहास मे आज तक कहीं अहिंसा द्वारा शक्ति हाथ में नहीं आई. राज नहीं कायम हुए! इन दोनो दलीलों के कथन-मात्र से ही इनकी सत्यता सिद्ध मानली

जाती है, जब कि थोड़ी सी भी बुद्धि से काम लेने पर इनकी असलियत और निस्सारता उसी प्रकार प्राप्त हो जाती है जिस प्रकार भेद और चालाकी का पता लग जाने पर बाजीगरों के जादुओं की। कौन नहीं जानता कि शक्ति का प्रयोग तभी किया जाता है जब उसका प्रयोग करने वाले को सही या गलत यह विश्वास हो कि जिस पर मैं बल-प्रयोग करने जा रहा हूँ वह अशक्त है। जब कि अहिंसात्मक युद्ध-कला की यह खास खूबी है कि उसका प्रयोग करने वाले पग पग पर पशु-बल के पक्षपातियों पर यह प्रत्यक्ष कर देते हैं कि उनके पास आत्म-बल का ऐसा अमोघ अस्त्र है जिसके कारण विरोधियों का पशुबल उसी प्रकार विफल और बेकार होजाता है जिस प्रकार तृणहीन भूमि में अग्नि। इतिहास की दुहाई इससे भी ज्यादा थोथली है। समझ में नहीं आता कि इस दलील का प्रयोग करने वाले यह क्यों और कैसे भूल जाते हैं कि हम लीक-लीक चलने वाले भेंड़ नहीं, नित नए इतिहास के निर्माता मानव हैं। इतिहास की वास्तविकता क्या है? विश्व के जीवन के मापदण्ड से अभी मानव समाज है

रखे ? बात बात पर विवेक की दुहाई देने वालों का यह अविवेक, प्रगति की गति के सम्बन्ध में अपने को प्रगतिवादी कहने वालो की इस नास्तिकता से बढ़ कर आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है ?

जो कुछ और जैसा कुछ इतिहास उपलब्ध है उसी को देखा जाय तो पता चलेगा कि उसमें हिंसा की विफलता के उदाहरण उसकी सफलता के उदाहरणो से कम नही, अधिकही मिलते हैं। यह दूसरी बात है कि हिंसा के प्रति अपने मूढ़ग्राह के कारण हम उसकी विफलता के उदाहरणो की ओर दृष्टिपात ही न करें। परन्तु यदि हम अनासक्त बुद्धि से, शुद्ध वैज्ञानिक पद्धति से विचार करे तो वही दशा होगी जो डार्विन के जीवन-संघर्ष के सिद्धान्त की हुई थी। प्रकृति के एकाङ्गी पर्यवेक्षण से डार्विन ने प्रचुर प्रमाणो द्वारा जीवन-संघर्श के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसी प्रकृति का पर्यवेक्षण करके उससे कहीं अधिक प्रचुर प्रमाणो द्वारा प्रिंस क्रोपाट्किन ने यह सिद्ध किया कि जीवन-संघर्ष का डार्विन का सिद्धान्त अर्द्ध-सत्य-है और परस्पर सेवा-सहायता का सिद्धान्त उससे अधिक सत्य है। इसी तरह हम संसार के प्राप्य इतिहास का विहगावलोकन करे तो हमें मालूम होगा कि उससे हिंसा की विफलता उसकी सफलता से अधिक प्रतीत होती है।

इतिहास के प्रत्येक पृष्ट पर हिंसा की बर्बरता के प्रमाण मिलते है। हिंसा द्वारा मानव ने अपने शासन और शोषण के नाम-रूपमात्र को बदला है, शासन-शोषण को नहीं। इङ्गलैण्ड के

इतिहास को लीजिए—साम्राज्यवादी की स्वाधीनता से फ्रांस की जनता ने बादशाह की गुलामी के बदले बैरन्स-सामन्तों की गुलामी अपने ऊपर थोप ली। बाद को उन्होंने सामन्तशाही का जुआ उतारा तो पूँजीवाद के शिकंजे में जुत गए। लेकिन फ्रांस बदला, और इस समय भी यदि कभी वह लाल-क्रान्ति सफल भी हो जाय तो उन्हें पूँजीवाद के शिकंजे से निकल कर कम्यूनिस्ट पार्टी वगैरह की रिक्शा खींचनी पड़ेगी! इन सब परिवर्तनों में जनता का शोषण और उसके ऊपर दूसरों के शासन का अन्त कहाँ और कब हुआ?

इतिहास से हमें यह भी मालूम होता है कि हिंसा का परिणाम न केवल स्थायी ही नहीं होता बल्कि उससे और भी अधिक हिंसा की उत्पत्ति होती है। रूस के इतिहास को ले लीजिये। वहाँ ज़ार के हिंसात्मक दमन ने बोल्शेविक हिंसा को जन्म दिया और बोल्शेविक हिंसा की प्रतिक्रिया यूरप में फासिस्टों और नात्सियों के हिंसा के रूप में प्रकट हुई।

कपटपूर्ण है कि उनसे किसी को कोई आशा या किसी प्रकार का भ्रम नहीं है कि पूंजी वाद और साम्राजवाद दोनो मे दुर्दमनीय दर्प साफ दिखाई दे रहा है। 'चर्चिल ने खुल्लमखुल्ला यह ऐलान किया कि मै साम्राज्य का प्रधान मन्त्री साम्राज्य का दिवाला निकालने के लिए नहीं हुआ हूं। हिन्दुस्तान मे चर्चिल की क्रूरता किसी नात्सी और फासिस्ट से कम नहीं। उसने अतलांटिक चार्टर को भी महज मजाक बना दिया। लेकिन रूजवैल्ट और उसकी अमेरिका ने उफ तक नहीं की। चर्चिल ने भारत के मामले मे नेक सलाह देने के लिए च्याङ्काईशेक और अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवैल्ट के जाती दूत फिलिप साहब का घोर अपमान किया लेकिन रूस और अमेरिका किसी ने चूँ तक नहीं की, बल्कि इङ्गलैण्ड मे अधिकारी कम्यूनिस्ट नेता ने पौलैण्ड के मामले मे यह कहा कि जब रूस हिन्दुस्तान के मामले मे ब्रिटेन से कुछ नहीं कहता तो ब्रिटेन पोलैण्ड के मामले मे क्यो दखल देता है ? चर्चिल ने यह भी कहा कि हम अपने समस्त साम्राज्य को अपने शिकञ्जे मे ज्यो का त्यो जकड़े रहेंगे। १६४४ में सीरिया के प्रति पराजित फ्रॉस के भागे हुए नेता डा० गौले ने जो सड़ी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति प्रदर्शित की थी वह किसे नहीं मालूम ? युद्ध मे जर्मनी हारता दीखता है सम्भव है हिटलर को अपने प्राणो से हाथ धोने पड़ें परन्तु इससे हिटलर-शाही थोड़े ही मरेगी। वह हिन्दुस्तान के नौकर-शाही और ब्रिटेन के साम्राज्यवादियो मे सहस्रश. गुनी होकर प्रकटेगी ! जर्मन-राष्ट्र और जर्मन जनता के प्रति इङ्गलैण्ड और अमेरिका का ही नहीं

के वि ोही होने के लिए आवश्यक लैनिन की इस शर्त्त का पूरा होना प्राय: असम्भव कर दिया है कि सेना को माहवारी वेतन न मिले। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस बात का भी प्रबन्ध कर लिया है कि सेना मे जाग्रत और सचेत क्रान्तिकारी जन-वर्ग का आधिपत्य न होकर क्रान्ति विरोधी टुटपुँजिये वर्ग का प्राधान्य हो। आज-कल की स्थल-सेना को हवाई जहाज सहज सहज ही परास्त कर सकते हैं और हवाई जहाजो मे चालकों की नियुक्ति में इस बात की पूर्ण सावधानी रक्खी जाती है कि वे क्रान्ति-विरोधी, प्रतिक्रियावादी, तथा जड़तावादी वर्ग के हो। अभी हाल में युद्ध-काल मे ही ग्रीस और बेलिजियम मे जाग्रत तथा क्रान्तिकारी जन-वर्ग को किस प्रकार कुचल दिया गया। यह कौन नहीं जानता ?

हिन्दुस्तान की राजनीति के पिछले पच्चीस वर्षो के इतिहास पर नजर डालिये। यहाँ सिद्धान्ततः अहिसा का विरोधी कौन नहीं है ? मुस्लिम-लीगी, हिन्दू महासभाई, फारवार्ड ब्लाकी, लिवरल लीगी, समाजवादी, किसान-सभाई, खाकसार और कम्यूनिस्ट सभी तो अहिसा का मजाक उड़ाते है। लेकिन व्यवहार मे कम्यूनिस्ट और समाजवादियो ने हिंसा से सफलता प्राप्त करना तो दूर कब और कहाँ उसका प्रयोग कर के पथ-प्रदर्शन किया ? लखनऊ मे मदहे साहिबा और तबर्रा के मामले में तथा शहीदगंज मस्जिद के मामले मे मुस्लिम लीगियो का हिसक शौर्य कहाँ चला गया था ? हैदराबाद के मामले मे हिन्दू महा सभाइयो की हिसा कहाँ पलायन कर गयी थी ? अप्रैल

१९२० के अपने सत्याग्रह के समय आरबाई क्रान्तियों और किसान-लड़ाइयों की हिंसा किस गिरि-गुहा में जा छिपी थी? पंजाब के ग्वालसागों की हिंसा किस जंगल में जा छिपी थी? इन और ऐसे दूसरों में से किसी एक ने भी अभी तक सार्वजनिक हिंसा का प्रदर्शन करके क्यों नहीं दिखाया? अकाली सिक्ख तो सैनिक जाति के हैं, उन्होंने गुरु द्वारा सुधार के लिए अहिंसा से काम क्यों लिया? मुल्शी पेठा वगैरः में मराठों को अहिंसात्मक सत्याग्रह की क्यों शरण लेनी पड़ी? हिंसा के प्रति अपने विश्वास को लिए जगत्प्रसिद्ध सरहदी पठानों के अनन्य नेता सरहदी गान्धी अब्दुलगफ्फारखाँ अहिंसा पर वर्किङ्ग कमेटी के सब सदस्यों से ज्यादा जोर क्यों देते हैं? भारत के प्रगतिशील, संघर्षमय और क्रान्तिकारी पचीस बरस के इतिहास के सब तथ्य और सत्य हमें क्या शिक्षा दे रहे हैं? हम यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रश्न हिंसा-अहिंसा के आदर्शों की कभी समाप्त न होने वाले सैद्धान्तिक विवाद का नहीं, व्यावहारिक जीवन में, वर्तमान अवस्थाओं में, अपनी राजनीति में उनके प्रयोग का है। और प्रयोग की दृष्टि से अहिंसा ऐसी ऐतिहासिक आवश्यकता है कि सब को लाचार हो उसी से काम लेना पड़ता है।

अनेक मार्क्सवादी विचारक यह मानने लगे है कि समाजवाद की स्थापना भी शान्तिमय उपायो से ही सम्भव है। यूरुप और अमेरिका के लगभग सभी समाजवादी मार्क्सवादी इसी विचार के है और एक सोवियत रूस को छोड़ कर दूसरे सब देशो मे इन समाजवादियो का प्रभाव कम्यूनिस्टो से कम नहीं अधिक ही है।

राजनीति का व्याकरण (Grammar of politics) नाम की पुस्तक के दो सौ उन्तालीसवे पृष्ठ पर प्रो० हैरोल्डलास्की ने सक्रिय घृणा और हिसा को व्यर्थ बताते हुए स्वीकृति अथवा सहमति द्वारा क्रान्ति के मार्ग का समर्थन किया है। यह मार्ग महात्मा गान्धी के हृदय-परिवर्त्तन के अलावा और क्या है? उत्तर है तो केवल यह कि हृदय-परिवर्त्तन को आदर्श और उसकी प्रक्रिया के सामने प्रो० लास्की की उक्ति निस्तेज और निर्जीव सी मालूम होती है।

घृणा की निन्दा करते हुए प्रो० लास्की ने लिखा है कि घृणा जिस हृदय मे निवास करती है उसका नासूर बन जाती है। घृणा करने वाले मे वे सब बुरी बाते पैदा होती हैं जिनके कारण वह दूसरे से घृणा करता है। प्रो० लास्की का कहना है कि हिसा द्वारा सफलता प्राप्त करने वाले विजेताओ का प्रभाव भी अहिसा मार्ग के असफल लोगो से अधिक नहीं होता। पूरब मे बुद्ध का और पश्चिम मे ईसा का जितना प्रभाव है उतना किसी विजेता का नहीं। स्वतन्त्रता-संग्राम की रण-कौशल की चर्चा करते हुए उन्होने लिखा है कि लोगो की लोक-तन्त्र द्वारा प्राप्त

सम्पत्ति के इस अन्त में उस हल से कहीं अधिक स्थायी सिद्ध होता है जो दबाव तथा हिंसा द्वारा पूरा करना पड़ता है।

रूजवेल्ट और चर्चिल को भी अटलांटिक घोषणा में अहिंसा के सामने सर झुकाना पड़ा था। उन्होंने कहा था कि "वास्तविक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के कारणों से संसार के सभी राष्ट्रों को पशु-बल का प्रयोग छोड़ना पड़ेगा।"

मशीनें पूँजीवाद की नाड़ियाँ होती हैं। वे मानव को अपने घरेलू धन्धों आदि से बाहर निकाल कर समस्त सम्पत्ति और शक्ति को थोड़े से लोगों के पास केन्द्रित कर देती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्राम-वाद, गान्धीवाद और किसान-राज पर किए जाने वाले आक्षेप कितने निराधार हैं। इसके विपरीत, ग्राम-वाद, गान्धीवाद और किसान-वाद को प्रगति विरोधी तथा प्रतिक्रियावादी कहने वालों के असली रूप को, उनके सिद्धान्तों और कार्यों को देखा जाय तो इस बात में किसी प्रकार का सन्देह ही नहीं रहता कि ये लोग मार्क्सवादी, साम्यवादी और समाजवादी किसानों के विरोधी, उनके शत्रु होते हैं।

वादी आदर्शो के विरोधी होते है और कभी कभी कम्यूनिस्ट सरकार को मार्क्सवादी सिद्धान्तो को ताक पर रखने के लिए विवश कर देते है। कम्यूनिस्ट रूस मे किसान न तो चुनावो मे अपने उम्मेदवार ही खड़े कर सकते है न किसान-सभा ही बना सकते है। मार्क्सवादी किसानो के घरेलू-धन्धो को नष्ट कर देना चाहते है। मार्क्सवादी ग्राम-स्वराज्य के, किसान-राज के कट्टर शत्रु होते है। इन्ही कारणो से रूस के किसान वहीं की कम्यू-निस्ट पार्टी की तानाशाही को पसन्द नही करते। यदि लैनिन ने बुद्धिमत्तापूर्वक, मार्क्सवाद के कृषि के राष्ट्रीयकरण सिद्धान्त को ताक पर रख कर 'जमीन किसानो की' इस सिद्धान्त को न स्वीकार किया होता तो रूस के किसान कुछ ही महीनो में सोवि-एत शासन को धूल में मिला देते।

किसान मार्क्सवादियो के वैयक्तिक सम्पत्ति के विनाश के सिद्धान्त को तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्त को कदापि स्वीकार नही कर सकते। भूमि के प्रति प्रेम तथा अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए आवश्यक वैयक्तिक सम्पत्ति तथा मानवी स्वाधीनता का भाव उनकी रग रग मे कूट कूट कर भरा हुआ है। रूस के किसान मध्यम श्रेणी के टुटपुँजिये वर्ग के ही थे। उनमे मध्यवर्ग का वैयक्तिक सम्पत्ति का प्रेम पूर्ण मात्रा मे विद्य-मान है। किसानो की इसी मनोवृत्ति के कारण १६४२ तक सोवियत रूस को जमीन पर किसानो का दमामी दखल तथा उनकी मौत के बाद वारिसो का हक छः साल तक पट्टे पर उठाने का व कुछ सीमाओ के साथ मजदूरों से काम लेने का अधिकार

भी मिला हुआ है। केवल बेचने व गिरवी रखने का अधिकार नहीं है।

चतुर लेनिन ने किसानों की इस मनोवृत्ति पर दृष्टि रख कर हुशियारी से काम लिया। उसकी नई आर्थिक नीति ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का श्राद्ध करके किसानों की इस मनोवृत्ति के सामने सर झुकाया। स्तालिन ने "लेनिनवाद" नामक पुस्तक में लिखा कि किसानों के सम्बन्ध में लेनिन की नीति यह थी कि जारशाही और पूँजीपतियों के खिलाफ किसानों की मदद लेने के लिए जमींदारों के खिलाफ सब किसानों की मदद करो और जब किसानों की मदद से मजदूरशाही के नाम पर कम्यूनिस्टों की तानाशाही कायम हो जाय तब गरीब किसानों को इस बात के लिए उकसाओ कि वे आसूदा किसानों से अलग संगठन करें और फिर इन गरीब किसानों की मदद से खाते किसानों में फूट डाल कर समस्त आसूदा किसानों को नष्ट कर दो। इसके बाद खेती के मजदूरों और गरीब किसानों में फूट डाल कर अपनी तानाशाही के बल पर गरीब किसानों का भी खात्मा कर दो—उन्हें सर्वहारा कुली मजदूर बना डालो और इस प्रकार सब जनता को सर्वहारा सम्पत्तिहीन मजदूर बनाकर सब श्रेणियों को नष्ट करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करो।

प्रमाण लीजिए—लेनिन ने पहले कहा था कि हम पूँजीपति जमींदारों की तरह "कुलकों" (रूस के आसूदा किसानों) से यह नहीं कहते कि तुम अपनी समस्त सम्पत्ति से वंचित कर दिए जाओगे। बाद को, वे ही [illegible] अपनी सब सम्पत्ति से [illegible]

क्रूरता के साथ वञ्चित किये गये कि उनके बाल-बच्चो के करुणा-क्रन्दन को सुन कर छोटे-छोटे किसानो और गाँव वालो की आँखो से वरवस अश्रु-धारा वहने लगती थी। स्टालिन ने अगस्त १६१७ मे तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए कहा था कि "यदि किसानो के दिल से उच्च वर्ग और निम्न-वर्ग के लोगां के समझौते का ख्याल न निकाला गया तो हमे कष्ट भोगने पड़ेगे और क्रान्ति विफल हो जायगी।" सामूहिक खेती मे आर्टलला का प्रचार भी केवल चालवाजी, मौका-परस्ती है। असली उद्देश पूर्ण कानून की स्थापना है। लेकिन किसानो के विरोध के कारण उस काम को धीरे-धीरे करना है मार्क्सवाद का अन्त मे किसानो को कुली बनाने का उद्देश और आदर्श इतना स्पष्ट है कि जब लैनिन और स्टालिन ने इन आदर्शों के प्रति रूस के किसानो के विकट विरोध को देखकर अपनी सामयिक नीतियो में उल्लिखित परिवर्तन किये तव सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी मार्किस्टो ने न केवल इनका विरोध ही किया वल्कि उनमे से कुछ ने तो इनकी इस नीति से व्यथित होकर उसे मार्क्सवाद के प्रति विश्वास घात समझ कर निराशा की झोक मे आत्म-हत्याएँ तक कर डाली।

[१] तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय के कार्यक्रम मे यह साफ साफ कहा गया है कि प्रोलिटेरिएट के लिए यह लाजिमी है कि वह मध्य-वर्गीय किसानो को तटस्थ कर दे तथा उनके साथ टिकाऊ मेल करे परन्तु किसी भी हालत मे उनके साथ शक्ति (शासन) मे साझा न करे। किसानो को

सामन्तशाही के हटने पर सन्तुष्ट हो जाते हैं और व्यवस्था की ओर चले जाते है वे बहुत ही कम अवस्थाओ मे बुरजुओई उदार वाद और मजदूर-लोक तन्त्रो मे चुनाव करते में हिचकते है। मार्क्स की मुख्य शिक्षा यही है कि समाजवादी समाज की सृष्टि प्रोलीतेरिएत ही कर सकते है। १८५० में कम्यूनिस्ट लीग में भाषण देते हुए स्वयं कार्लमार्क्स ने कहा था कि मानव समाज मे प्रोलीतेरीएत ही एक मात्र क्रान्तिकारी वर्ग है। टुटपुँजिए लोकतन्त्री जोतने वाले किसानो को जमीन पर वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार दे देंगे और इस प्रकार टुटपुँजिये किसान वर्ग की सृष्टि करेंगे। मजदूरो को इसका विरोध करना चाहिये खेती के मजदूरों (प्रोलीतेरिएत) के हितो मे। बोल्शेविको के मतानुसार गॉव अज्ञानान्धकार आवृत्त तथा बहरे होते है। शहरो द्वारा उनको "सभ्य" बनाये जाने की जरूरत है। उनका उद्देश किसानो को सॉस्कृतिक दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से शहरी बनाना, किसानो को मजदूर बनाना तथा किसानो की रीति रिवाजो व उनकी वेश-भूषा का अन्त करना है। जान-मैनार्ड ने रूसी किसान पृष्ठ ३२८-४३१ मे लिखा है कि किसान सदैव समाजवादी आदर्शों के लिए खतरा है। कभी-कभी वे सोवियत सरकार को समाजवादी नीति से हटने को विवश कर देते है। यही कारण है कि सोवियत रूस मे किसानो को न तो चुनावो में किसान-उम्मेदवार खड़े करने का अधिकार है न किसान सभा बनाने का।

सोवियत रूस का इतिहास इन बातों के प्रमाणों से किसानों

के साथ दुर्भांति से, किसानों द्वारा अपने ऊपर होने वाले अन्यायों के प्रतिकार के प्रयत्नों से तथा कम्यूनिस्ट तानाशाहों द्वारा किसानों के क्रूर-दमन की काली कथाओं से भरा पड़ा है। किसानों के प्रति कम्यूनिस्टों की इस दुर्भांति ने प्रथम सोवियत शासन-विधान तक में स्थान पाया। उसमें मजदूरों को पच्चीस हजार पीछे एक प्रतिनिधि दिया गया, किसानों को सवा लाख पीछे एक। इस तरह एक मजदूर को पाँच किसानों के बराबर घोषित कर के बहुसंख्यक किसानों पर अल्पसंख्यक मजदूरों का बहुमत कर दिया गया। ऐसा अन्याय तो हिन्दुस्तान में सवर्णों का अछूत मानी जाने वाली जातियों के साथ भी नहीं होता। यह अन्याय १९३६ तक होता रहा। उस समय तक कम्यूनिस्टों की इस काली नीति से संसार भर के किसान उनके विरुद्ध हो गये थे। पहले मुसोलिनी ने इटली में और अन्त में हिटलर ने जर्मनी में कम्यूनिस्टों के खिलाफ किसानों को अपनी तरफ मिला कर वहाँ के कम्यूनिस्टों को कुचल दिया तब लाचार हो कर हिटलर के डर से सोवियत ने अपने विधान के इस काले भाग पर कूँची फेर दी।

रूस में दुर्भांति (Discrimination in Russia) नामक पुस्तक में लेखक ने लिखा है कि यह [illegible] भारी सामाजिक अनाचार था।" रूस के किसानों में यहाँ की कम्यूनिस्ट सरकार के इस दुर्भांति के प्रति [illegible] असन्तोष था। सोवियतों और किसानों की [illegible] [illegible] किसान प्रतिनिधि ने [illegible]

सरकार के प्रति किसानो के असन्तोष को इन शब्दो मे व्यक्त किया था—"जमीन किसानो की है लेकिन रोटी आपकी। सर-सरिता किसानो के है मछलियाँ आपकी। जङ्गल किसानो के हैं लकड़ी आपकी।" और यह तो तब था जब वेचारे किसान कम्यूनिस्ट सरकार के अन्यायो और अत्याचारों के प्रति अपना रोष तथा चोभ प्रकट करते हुए इस डर से हिचकिचाते थे कि इनकी सरकार के खत्म होने पर कहीं जमींदारो का राज न आ जाय। फिर भी किसानों ने अपने अधिकारो की रक्षा के लिए असहयोग के अमोघ अस्त्र से काम लिया। उन्होने कम्यूनिस्ट सरकार को सक्रिय सहायता देना बन्द कर दिया। न केवल वे रूस पर श्वेत रूसियो के आक्रमण के समय ही शुरू मे चुप रहे परन्तु उन्होने कम्यूनिस्ट सरकार और उसके आधार तथा लाड़ले शहरी मजदूरों के लिए अन्न का उत्पादन करना बन्द सा कर दिया। किसानो की इस शक्ति को देख कर ही विक्टर चर्नोव (Chernov) ने यह कहा था कि रूस के असली धींग स्वेच्छाचारी (Autocrate) तो किसान है। नाज और ईंधन की पूर्ति उनके हाथ मे होने के कारण वे कम्यूनिस्ट सरकार और उसके शहरी मजदूरों को भूखों मार सकते हैं। किसानों के इसी असहयोग से विवश होकर लैनिन ने युद्धीय (War) कम्यूनिज्म को छोड़ कर नई आर्थिक नीति की घोषणा की। इस नई नीति मे किसानो की कृषि के छुटपुंजियेवाद को काफी स्वाधीनता दी गई। किसानो का वैयक्तिक सम्पत्ति का तथा वैयक्तिक व्यापार का अधिकार वहुत हद तक मान लिया गया।

अक्टूबर १९२१ में लेनिन ने स्वयं यह स्वीकार किया कि "न
आर्थिक नीति स्थाल पराजय के बाद अस्थायी
पुनरावर्तन है, यह समाज वाद नहीं है।" १९२४ में स्ता
स्तालिन को इस सत्य की घोषणा करनी पड़ी कि समाजवाद
की सफलता के लिए अकेले किसानों के देश रूस का ही
पर्याप्त नहीं है। १९२४–२५ में स्वयं स्तालिन ने किसानों को
अधिकार दिया कि वे अपने खेत पट्टे पर उठा सकें
मजदूरों से खेती का काम करा सकते हैं। रूस की
सरकार को विरोधी किसान वर्ग की शक्ति के कारण
योजना का श्रीगणेश करने के लिए आठ वरस की
प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

कीमत पर खरीदती थी। इस मामले में वह बेचारे किसानो की एक नहीं सुनती थी। इस अन्याय से तथा अपने परिवार को भूखो मरने से बचाने के लिए किसान अपना नाज छिपा देते थे। कम्यूनिस्ट सरकार ने सामूहिक खेती का प्रचार जिन उद्देशों से किया उनमे से एक यह भी था कि कम्यूनिस्ट सरकार किसानो से मालगुजारी आसानी से वसूल कर सके और उसकी तथा शहरी लोगो की खाने की कठिनाई दूर हो जाय।

इसी उद्देश से १६२७ से रूस की कम्यूनिस्ट सरकार ने किसानो के प्रति फिर क्रूरता का रुख अख्तियार किया। उस साल दिसम्बर मे खेत पट्टे पर उठाने तथा मजदूरो से खेती का काम कराने पर रोके लगी। जनवरी १६२८ मे आसूदा किसानों को ग्राम-सोवियतो (ग्राम-पञ्चायतो) से निकाल दिया गया। मार्च १६२८ मे नाज के डिक्टेटर की नियुक्ति हुई। जनवरी १६३० में खेती के पूर्ण सामूहिक-करण तथा कुलकों के मूलोच्छेद बीज-देश-विनाश की नीति की घोषणा की गई। पचास लाख किसान इस नीति के शिकार हुए। उनकी सब जायदाद तथा सम्पत्ति छीन ली गई और उन्हे उनके घरो से निकाल दिया गया। स्वभावत: इस नीति के प्रयोग मे घोर अनाचार भी हुए। जैसे हिन्दुस्तान में १६४२ से ४४ तक जिस किसी ने कोई हुकाम नाराज हो जाता उसी को युद्धोद्योग का बाधक बता कर डी० आई० आर मे धांग दिया जाता था उसी तरह रूस में भी उन दिनो जिस किसी किसान से कम्यूनिस्ट हाकिम नाखुश हो जाता उसी को कुलक करार देकर उसका माल-मता छीन कर

कारण बरखास्त किया गया जो उन्होने किसानो पर किये थे तथा साबित हो गये थे।

सोवियट रूस मे किसानो के प्रति यह दुर्भांति अब तक जारी है। अब तक वहाँ शहरी मजदूरो को इकलौता लाड़िला बेटा और किसानो को सौतेला माना जाता है। किसानो की हैसियत मित्र सहायक Ally की है, प्रोलीतेरिएत डिक्टेटर के साथी-शासक-साथी की नही यद्यपि कम्यूनिस्ट सरकार को किसानो पर प्रत्यक्ष करो से मिस्टर हुवार्ड के मुताबिक कुल आमदनी का आधे के करीब ½ मिलता है। अप्रत्यक्ष कर इसके अलावा है। अवकाश-गृह और स्वास्थ्य-निकेतन केवल शहरी मजदूरो के लिये हैं, ग़रीब किसानो को उनमे जाने की मुमानियत है और इस भेद-भाव को साम्यवाद के नाम से पुकारा जाता है। किसान-जच्चाओ को शहरी मजदूरिन-जच्चाओ का आधा भत्ता मिलता है। लाल सेना मे किसान सैनिक को शहरी सैनिक से आधा पारिवारिक भत्ता मिलता है। किसानो को काम भी शहरी मजदूरो से कही कठिन कमर तोड़ करना पड़ता है। ये बातें समाजवादी जान मैनार्ड ने अपनी 'रूसी-किसान' नामक प्रामाणिक पुस्तक के तीनसौ चार वे पृष्ठ पर लिखी है। उनका करना है कि किसानो को कारखानो का मजदूर यानी कुली बना दिया गया है। जिस तरह हिन्दुस्तान मे अंग्रेज और एङ्गलो-इण्डियन शासक जाति के माने जाते है उसी तरह मास्को में रूस के कम्यूनिस्टो और मजदूरो को शासक जाति का माना

जाता है। सोवियट रूस में बेचारे किसानों को किसान-सभा बनाने का कोई अधिकार नहीं है। जबकि हिन्दुस्तान में किसानों की कांग्रेस के विरुद्ध किसान-सभा बनाना यहाँ के कम्यूनिस्ट अपना जन्म-सिद्ध अधिकार ही नहीं परम पावन कर्तव्य समझते है। सोवियट रूस में चुनावों में किसानों को अपने उम्मेदवार खड़े करने तक का हक नहीं है। कानून द्वारा उनको इस अधिकार से वंचित कर दिया गया है। लेनिनग्राड के पास वहाँ के किसानों ने अपना एक उम्मेदवार खड़ा किया तो कम्यूनिस्ट उम्मेदवार ने इस काले कानून के मुताबिक उसका नामजदगी का परचा खारिज करा दिया। इस जुल्म से पागल होकर किसानों ने कम्यूनिस्ट उम्मेदवार को मार डाला। इस पर बेचारे किसान उम्मेदवार को फाँसी दे दी गई। जबरदस्ती सामूहिक खेती के खिलाफ किसानों ने जब फसल सत्याग्रह किया यानी सिर्फ इतनी ही खेती की जिसकी पैदावार से केवल उन्हीं के परिवार को खाने भर का गुजारा हो और कम्यूनिस्ट सरकार को कुछ न मिले तो स्तालिन ने अपने नामानुसार नीति बरतते हुए किसानों का यह सब नाज जबरदस्ती ले लिया। फलस्वरूप अकाल में १९३३ में जो हुआ वही रूस में हुआ। बीसियों लाख किसान भूखों मर गये। यदि ऐसे किसानों के ऐसे क्रूर शत्रुओं ने साम्यवाद और किसान-राज गुरु-मानव नाम लिये हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

कार्ल मार्क्स के लेखों में मजदूर किसानों के सम्बन्ध में वास्तविकता की झलक भी मिलती है। वे किसानों के सम्बन्ध

की वास्तविकता से विवश होकर अपने सिद्धान्तो में संशोधन की आवश्यकता को भी मानते है। परन्तु दिक्कत हमेशा उतनी मूल से नहीं होती जितनी भाष्य और टीकाओ से। कौन नहीं जानता कि निष्काम कर्मयोग के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ गीता की अनेक टीकाकारो ने कैसी दुर्दशा की—उसे पलायन और अकर्मण्यता का घातक साधन बना दिया। संसार के इतिहास मे बहुधा यह पाया गया है कि जब चेले शक्कर हो जाते हैं तब वे सारा गुड़ गोबर कर देते है। चेलो ने बौद्धधर्म को क्या से क्या बना दिया। अष्ट-मार्ग को किस प्रकार इन्द्रजाल और भ्रष्ट तन्त्राचार का क्रीड़ा-भवन बना दिया, यह सभी को मालूम है।

तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय के प्रोग्राम मे स्पष्ट निर्देश है कि चीन और भारत जैसे पराधीन या अर्ध पराधीन देशो मे मुख्य काम (अ) सामन्तशाही के पूँजीवाद से पूर्व काल के ढङ्ग के शोपण का अन्त करने तथा किसान-क्रान्ति को व्यवस्थित रूप से विकसित करने का और (ब) राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए विदेशी साम्राज्य शाही से लड़ने का है। अर्थात् किसान राज की स्थापना का है, फिर भी हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट ब्रिटिश साम्राज्य शाही के नाक के बाल बनने और किसान-राज के लिए लड़ने वाली एक मात्र संस्था राष्ट्रीय महासभा का सदैव विरोध करते रहने मे तनिक भी नहीं हिचकिचाते।

वे यह भूल जाते है कि आज भी किसानो में अकेले रूस के किसानो मे इतनी शक्ति है कि स्वयं सोवियत रूस का भाग्य उनके खुदरे हाथो मे है। १६३० के बाद आज तक स्टालिन का

कारी लेखक आचार्य डाक्टर एच० डब्लू लैडलर ने पाँच सौ सोलह वे पृष्ठ पर लिखा है कि रूस में जब जब कम्यूनिस्ट सरकार ने किसानो के हितो के विरुद्ध देश का शासन करने का प्रयत्न किया तब तब उसकी उन्नति का अवरोध हुआ ! लेकिन हिन्दुस्तान के कम्यूनिस्ट और समाजवादी बिना शक्ति के ही हिन्दुस्तान मे आज ही भूमि का राष्ट्रीकरण कर देना चाहते हैं। सोवियत रूस मे तीन एकड़ तक के गरीब किसान अंशतः या पूर्णत. लगान से बरी किये गये लेकिन हिन्दुस्तान में अखिल-भारतवर्षीय काँग्रेस समाजवादी दल के एक सभापति महोदय ने जिन किसानो की जोते इतनी छोटी है कि उनके परिवार की न्यूनतम आवश्यकताएँ भी नहीं पूरी हो सकतीं, उनको लगान से बरी करने के प्रस्ताव का विरोध किया, समाजवाद के नाम पर।

बार-बार अर्थ शास्त्र की दुहाई देते हुए हम यह क्यो भूलें कि ब्रिटेन की अठारहवी उन्नीसवी सदी मे पूँजीवादी समाज की अवस्थाओं का अवलोकन कर के आदम स्मिथ, रिकार्डो, मिल और माल्थस ने अर्थ-शास्त्र के प्रतिस्पर्धा और मुक्त निर्बाध व्यापार पर आधारित जो सिद्धाँत स्थिर किये थे उनको संसार के हाल के चालीस साल की आर्थिक घटनाओं ने सर्वथा भ्रम पूर्ण सिद्ध कर दिया है। शहरी और औद्योगिक देशो का यह अर्थ शास्त्र ग्रामो के देश भारतवर्ष पर लागू नहीं हो सकता। अर्थ शास्त्र के सही सिद्धान्तो को भी किसी देश मे लागू करते समय हमें उस देश की वास्तविक देशकाल अवस्था वहाँ के लोगों की

आदतों, उनके व्यवहार के ढङ्गों, उनकी सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं पर उस हद तक अनिवार्यतः ध्यान देना होगा जिस हद तक ये सब बातें लोगों के आर्थिक जीवन को प्रभावित करती हैं। और इन बातों की ओर ध्यान देने पर देश के अर्थ शास्त्राचार्यों की सम्मति है कि भारत की आर्थिक उन्नति की नींव गाँवों के पुनरुज्जीवन पर ही डाली जा सकती है।

विज्ञान दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति इतिहास किसी की दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि मार्क्सवादी विचार-धारा उन्नीसवीं सदी के उन सिद्धान्तों पर आधारित है जो बीसवीं सदी में गलत साबित हो चुके हैं। आज कल के मार्क्सवादी कम से कम आधी शताब्दी के पुराणपंथी हैं। उनके सत्य घिस घिस कर बेकार हो गये हैं, उनकी संस्कृति पोप-कथा के कारण मर रही है। मार्क्सवाद सोवियत रूस का राज्याश्रय प्राप्त कम्यूनिस्टों का मजहब मात्र रह गया है। एच० जी० वेल्स कम्यूनिस्ट मजदूर वर्ग से इतनी घृणा करता है कि उसे निष्क्रिय और निकृष्ट पशु ही न मान कर बहुत ही गन्दी, बुरी और खतरनाक चीज मानता है। हम वेल्स की उस मजदूर निन्दा से सहमत नहीं हैं। न हम किसानों की उस निन्दा से ही सहमत हैं जो मार्क्सवादी करते हैं। हाँ, हम किसानों को मजदूरों से बेहतर अवश्य समझते हैं।

सकती। ऐसी दशा मे महात्मा गान्धी का अहिंसात्मक सत्याग्रह-संग्राम ही एक मात्र मार्ग रह जाता है और यदि उस पर श्रद्धा विश्वास पूर्वक चला जाय, यदि समग्र दृष्टि से उस पर विचार किया जाय तो वह राज-मार्ग सिद्ध होता है। भौतिकवादी जिस विज्ञान को वेदो से भी अधिक प्रमाण मानते है वह विज्ञान धर्म का प्रभाव मानव को दानव बना रहा है। पश्चिम के साम्यवादी और फासिस्त साम्राज्यवादी आपस मे दानवो की तरह इसलिए लड़ रहे है कि किस रास्ते से हम नरक मे प्रवेश करे जब कि मानव के सामने पहला सवाल यह है कि क्या हमारे लिए नरक मे जाना जरूरी है और दानव का उत्तर इस सम्बन्ध मे स्पष्ट और निश्चित तथा जोरदार है कि "नही" फासिस्त, पूँजीवादी, साम्यवादी सभी नरक की दो आधारशिलाओ मे उपयोगी करण और नौकरशाही मे विश्वास करते है।

यूरुप मे आज चूँकि धर्म का स्थान गौणातिगौण है इसी लिए वहाँ स्थायी शान्ति भी गूलर का फूल हो गई है। लोककल्याण के लिए आवश्यक यह धर्म-भाव किसानो में ग्रामवाद और गान्धीवाद मे कूट-कूट कर भरा हुआ है। जिन्ना तक ने लीग के नवे सेशन के सभापति की हैसियत से इस बात को स्वीकार किया कि ग्राम पंचायते हिन्दुस्तान की लोकतन्त्रीय संस्थाओ का प्रमाण थी। हिन्दुस्तान के किसानो मे वैदिक-काल से ही राष्ट्र-भाव जाग्रत और मुखरित हो चुका था। पृथिवी-सूक्त इसका बहुत सुन्दर उदाहरण है।

कोई भी योजना बनाते समय हमें जिस देश के लिए योजना

चट्टे-बट्टे है। सब के लिए अर्थ, सम्पत्ति ही सब कुछ है।

ग्रामसङ्घ वाद Syndicalism, छोटे छोटे संघवाद Guild socialism, and Anarchism और अराजकता-वाद सम्प्रदाय साम्यवादी तथा समाजवादी भी छोटे-छोटे घरेलू धन्धो की उपयोगिता पर जोर देते है। Modern Palitical Theory नामक पुस्तक मे प्रोफेसर जैड ने और डाक्टर वोडिन ने सामाजिक चित्तवृत्ति नामक पुस्तक मे इनका समर्थन किया है। पी० एच० औलयार्ट का कहना है कि 'एक दूसरे से गुँथे हुए छोटे छोटे प्रजातन्त्र ही मानव-सभ्यता की नैतिक इमारत हो सकते है। आदम स्मिथ, डैविड रिकार्डो जैसे अर्थशास्त्र के आचार्यो तथा रचयिताओ ने और मार्क्स तथा प्रिंस क्रोपाटकिन ने भी इस बात को माना है कि मशीनी-करण की बुराइयो को दूर करने के लिए गाँवो के पुनरुज्जीवन की आवश्यकता है। मार्क्स सदरलैड और बर्नार्डशा का भी यही मत है। प्रो० गोल्ड ने Ebolution and Industrial Organisation नामक पुस्तक मे यही मत प्रगट किया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से अर्नेस्ट हन्ट ने लिखा है कि पाश्चात्य औद्योगिक समाज की बुराइयो को केवल समाजवाद नही दूर कर सकता। Ugly Civilisation नामक पुस्तक मे बोरोडिन ने भी यही कहा है।

हमारे देश मे नब्बे फीसदी लोग कृषि या उनके सहायक धन्धो मे काम करते है। सिर्फ दस फीसदी उद्योग-धन्धो मे। बड़े पैमाने के धन्धो मे सिर्फ तीन लाख मजदूर काम करते है।

इनको बढ़ाया भी जाय तो अधिक से अधिक पांच फीसदी आबादी को खपा सकेंगे। आज भी छोटे पैमाने के धन्धों तथा घरेलू धन्धों में बड़े पैमाने वाले धन्धों से कई गुने ज्यादा मजदूर काम करते हैं। १९४३-४४ की इंडियन ईयर बुक का कहना है कि १९४४ में ब्रिटिश-भारत और देशी राज्यों की एक शहरों में केन्द्रित सूत की मिलों में सिर्फ चार लाख तीस हजार मजदूर काम करते हैं जब कि अखिलभारतवर्षीय चर्खा-संघ के उत्पादन-क्षेत्रों में पौने तीन लाख। एक करोड़ जुलाहे इनके और अराजकतावाद अलावा। पिछले तीस साल में भारत में फैक्टरियाँ चौगुनी बढ़ीं। फिर भी बड़े पैमाने के धन्धों में काम करने वालों की फी सदी लगातार हर दशाब्दी में घटती ही गई। १९११ में वह ५॥ फीसदी थी। १९३१ में सवा चार फीसदी से भी कम हो गई। इससे सिद्ध है कि उद्योगीकरण से भारत में बेकारी की समस्या हल होने के बदले और भी बढ़ेगी।

देते हुए सर विक्टर सैसून ने यह कहा था कि घरो मे बिजली से चलने वाले करघो के धन्धे की गुञ्जाइश बहुत है। अगर इन करघो की कीमत सुलभ हो जाय तो छोटी पूँजी के इन घरेलू कारखानो से हिन्दुस्तान कपडे की कीमत और उसकी अच्छाई दोनो में दुनियाँ के किसी भी देश से मुकाबिला कर सकता है।

यूरुप के अनेक समाज शास्त्रियो का यह भी कहना है कि मशीने न तो कुछ सृष्टि करती है न कुछ उत्पन्न। फल स्वरूप मशीनो के शहरो मे मनुष्यो की सन्तानोत्पत्ति की शक्ति भी कम हो जाती है इसलिए जीव-शास्त्री यह कहने लगे हैं कि मानव-समाज को यदि जीवित रहना है तो उसे लौट कर गाँवों में जाना होगा।

एक अमेरिकन समाज-शास्त्री का कहना है कि अब बड़े-बड़े घने शहरो की संसार तथा मनुष्य समाज को तनिक भी आवश्यकता नही रही। घरेलू धन्धो और आर्थिक स्वयं पर्याप्तिता से संसार मे युद्धो का अन्त भी हो सकता है। जबकि बड़े पैमाने के धन्धो के कारण इस महायुद्ध के समय के ही ब्रिटेन और अमेरिका मे युद्धोत्तर बाजारो के लिए घृणित तू-तू मै-मै हो रही है।

जब सर विलियम वैवरिज तक की यह राय है कि इङ्गलैंण्ड और अमेरिका मे बड़े पैमाने के धन्धो से जो सत्यानाशी बुरा-याँइ हुईं उनके अनुभव के आधार पर भारत में घरेलू धन्दे ही

बहतर रहेंगे, तब हम ग्रामों के साम्यवाद को छोड़ कर पश्चिम के शहरी साम्यवाद के पीछे क्यों दौड़ें ?

किसान-राज योजना में वे सब जन-कष्ट भी बच जावेंगे जो रूस की योजनाओं में वहाँ की जनता को उठाने पड़े तथा जो सभी पूँजीवादी या पाश्चात्य योजनाओं में अवश्यम्भावी हैं। जब रूस में अभी तक कृषि में लगी आबादी कृषि योग्य संख्या में नहीं घट सकी तब हम भारत में उसके स्वप्न कैसे देख सकते हैं।

हमारी इस योजना में किसान-राज को योजनाओं, पूँजी, मशीनों, और उनके विशेषज्ञों के लिए हमें विदेशों और विदेशियों की कृपा-कोर पर भी अवलम्बित नहीं रहना पड़ेगा। उसमें किस धन्धे में कितने मजदूर लगावें और उनका नियन्त्रण कैसे करें Occupational Planning की उस कठिनाई का भी सामना नहीं करना पड़ेगा और किसान-राज की योजना में हमें अपने देश के किसानों के उस प्रतिरोध का सामना भी नहीं करना पड़ेगा जिसका रूस को करना पड़ा था; जब कि केवल सरकारी समाजवाद State Socialism में देश एक मशीन बन जायगा, उसकी स्वाधीनता नष्ट हो जायगी और सरकार के सर्वाधिकार सम्पन्न हो जाने की सम्भावना रहेगी। इसके विपरीत यह किसान-राज की योजना सर्वथा लोक-तन्त्रीय योजना है।

किया है, किसान पंथ इस उलटी गंगा को पुनः सीधी और सही दिशा मे प्रवाहित करेगा। भौतिक पदार्थों ने उनकी हलचलों ने तथा उनके संग्रह ने पाश्चात्यो के जीवन और उनके जीवनादर्शों को भौतिक ही बना दिया है, फिर भी उनकी अन्तरात्मा उससे सन्तुष्ट नही रहती। यही कारण है कि अध्यात्मवादी गान्धी किसान हिन्दुस्तान का मूर्तिमान रूप बन गया है। यही कारण है कि हिन्दुस्तान की जनता की जड़ता को दूर करके उसे जाग्रत और क्रियाशील बनाने मे गान्धी ने जो अद्भुत सफलता पाई है उसकी शतांश सफलता भी किसी और क्रान्तिकारी नेता या सङ्गठन को नहीं मिली।

सत्य और इतिहास के सर्वथा प्रतिकूल ग्राम-स्वराज्य को भारत के राजनैतिक अनैक्य और तत्परिणामस्वरूप पराधीनता का कारण बताया जाता है परन्तु इस ऐतिहासिक सत्य को भुला दिया जाता है कि अर्थ को ही जीवन-सर्वस्व बताने और मानने का कुफल यह हुआ है कि मजदूर-वर्ग विशेष कर उस नेता इतने अर्थार्थी हो गए है कि वे सरेआम लोक, मानव और स्वयं मजदूरो के हितो को कोड़ी के मोल बेच देते है। समाजवाद के इतिहास मे ही नहीं तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय के सम्मेलन तक में इस सचाई का जादू सर पर चढ़ कर बोलता है।

गाँवो और किसानो मे हमारे राष्ट्र की आत्मा का निवास है, अत. उन्हीं की संस्थाएँ तथा उन्हीं की व्यवस्थाएँ राष्ट्र को अन्तरात्मा को अभिव्यक्त करती है। उन्हीं से हमें अपने स्वाधीनता संग्राम मे यह अटल, अजेय तथा सदा विजयी विश्वास मिल

सकता है कि हम ईश्वर के इंगित के अनुसार लड़ रहे हैं, योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ अथवा भीम का बल और कृष्ण की नीति हमारे साथ है अतः हमारी विजय—सत्य, धर्म और न्याय की विजय निश्चित है।

विज्ञान, विवेक और भौतिक-वाद की अन्धी पूजा, उनके सम्बन्ध में यह मूढ़ भाव कि इनके अलावा और इनसे परे कुछ है ही नहीं, हमारे आध्यात्मिक जीवन को दुविधा में डाल देते हैं। हमारी श्रद्धा तामसी और राजसी हो जाती है और जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही हो जाता है। यही कारण है कि विज्ञान को अपने वश में रखने के बजाय हम विज्ञान के वशीभूत हो गये हैं। यही कारण है कि बुद्धि की दुहाई देते हुए हम बुद्धि योग को, शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता को भूल ही गये हैं। परिणामस्वरूप सही कार्यों के स्रोत स्वर्गिक सात्विक श्रद्धा तथा सही संकल्पों की शक्ति स्थिर व्यवसायात्मिका बुद्धि की वास्तविकता और समझ की शक्तियों का हममें सर्वथा अभाव हो गया है। मानव और जीवन के मूल्यों को आँकने पर रखने की हमारी शक्ति कुण्ठित हो गई है। हमारे हृदयों और मस्तिष्कों में हमारे कार्यों और विचारों में भेद की चौड़ी खाई बनती जा रही है।

युंग जैसे मनोविज्ञान के आचार्य भी मानव जीवन की पूर्णता के लिए आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। वे इसकी आवश्यकता और उपयोगिता प्रतिपादित करते हैं। परन्तु इससे इनकार नहीं [illegible] में इन भौतिक [illegible] का अनिवार्य [illegible] [illegible] है।

मनोविज्ञानी जुङ्ग यह कहते है कि मानव पूँजीवाद, लोकतन्त्र और साम्यवाद से घबड़ाता है, उसका त्राण और कल्याण अध्यात्मवाद से ही सम्भव है परन्तु हम सर्वथा सफल और व्यावहारिक गाँधीवाद का केवल इसलिए विरोध करते है कि वह सत्य और आत्मा-परमात्मा को क्यो मानता है ? जुङ्ग ने यह ठीक ही कहा है कि आज मानव आधि से नही व्याधि से पीड़ित है। उसकी व्यथा मानसिक और आध्यात्मिक है परन्तु अपनी चिकित्सा के लिए वह महात्मा के पास न जाकर डाक्टरो के पास भटकता है। आज पाश्चात्य देशो के विचारक और समाज-शास्त्राचार्य यह कहते है कि पश्चिम के फासिज्म-वाद लोकतन्त्र और साम्यवाद तीनो हलचलो के विरुद्ध वहाँ विद्रोह प्रारम्भ हो गया है, तीनो को ही लोग न्यूनाधिक अपूर्ण, सदोष और बेकार अतएव परित्याज्य मानने लगे हैं। परन्तु देश मे पश्चिम के अन्धानुयायियो को इन तीनो के अलावा कोई मार्ग भी नही दीखता। उस समय भी नहीं दीखता जब गान्धी-वाद प्रयोग और प्रदर्शन द्वारा अपनी अमोघता और व्यावहा-रिक सफलता का प्रत्यक्ष उदाहरण पगे पगे दे चुका है।

एक समय था जब मार्क्सवाद विराट अश्वत्थ का एक सुन्दर तथा स्वागतार्ह पल्लव था परन्तु अब वह सूख कर उस पीपल से टूट कर गिर पड़ा है तथा विश्व के विकास के इति-हास के कूड़े, करकट मे जा मिला है। अब भविष्य मानवाद, गान्धीवाद सर्वोदय और किसान-पंथ के हाथ मे है क्योंकि वे

जगदीश्वर की प्रसन्नता और जनजन की प्रतिष्ठा के नवीन त्या
सार्थक अङ्ग हैं।

हमारा अटल विश्वास है कि पाश्चात्य भौतिकवाद की
निशाचरी निनाद भरी निशा का अन्त होकर शीघ्र ही सुप्रभा
की शुभ वेला में आध्यात्मिक अरुणोदय होने वाला है। मान
और मानव-समाज, किसान-पंथ पर चलकर विश्वबन्धुत्व और मा
पार्लियामेंट के अपने विराट उद्देश्यों को सिद्ध करते हुए सं
में सर्वत्र सुख शान्ति लोकतन्त्र और चौमुखी स्वाधीनता
स्थापना करेगा, और उसके बाद नर से नारायण होने की
यात्रा प्रारम्भ कर देगा।

पालीवालजी की अन्य कृतियाँ

गीतामृत

अथवा

सनातन सञ्जीवन शास्त्र

चालीस वर्ष पहले जो ख्याति लोकमान्य तिलक के गीता-रहस्य ने पाई थी—पालीवालजी के इस भाष्य को उससे अधिक नही तो उतनी ही प्रसिद्धि अवश्य प्राप्त होगी। पालीवालजी की इस पुस्तक मे ससार के सभी वादो और भाषाओं का गम्भीर विश्लेषण है। पाश्चात्य साहित्य की, दर्शन और राजनीति तथा अर्थशास्त्र की सैकड़ो पुस्तकों का अध्ययन करके इस पुस्तक की रचना की गई है। हमारी राय में यह पुस्तक विचार-जगत् में क्रान्ति उत्पन्न कर देगी। शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। मूल्य लगभग ३) होगा।

हमारा स्वाधीनता-संग्राम

सन् १९२० से सन् १९४४ तक के स्वाधीनता-संग्राम का यह एक इतिहास है जिसमे उस समय की घटनाओं और उसके अधि नेताओ की आलोचना की गई है। देश में प्रचलित विभिन्न पार्टियो और वादों की भी यत्र तत्र चर्चा है। तथा आगे केलिए निश्चित कार्यक्रम है। अपने विषय की अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ४॥)

गान्धीवाद और मार्क्सवाद

गांधीवाद और मार्क्सवाद की तुलनात्मक आलोचना करते हुए इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि गान्धीवाद के मुकाविले में मार्क्सवाद ही नहीं और सभी वाद वैसे ही हैं जैसे सूर्य के सामने दीपक। वर्तमान राजनीति का ज्ञान देने वाली यह अपूर्ण पुस्तक है। शीघ्र ही प्रकाशित होगी। मूल्य १॥)

सेवाधर्म और सेवामार्ग

पालीवालजी की यह पुस्तक अपने ढंग की अद्वितीय है। इसकी उपयोगिता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि अब तक इसके तीन संस्करण हो चुके हैं। प्रत्येक ग्राम-सेवक और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता को पढ़ना चाहिये। मूल्य १॥) है

शुद्धाशुद्धि

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०सं०	लाइन
किसान-पथ	किसान-पन्थ	१	३
जर्मन विद्वान	जर्मन विद्वान हीडगर	३	७
सुनहरी	हरी	२१	१०
भ्रूर	क्रूर	२१	२०
बड़ा	कड़ा	३१	१०
Friend	Field	२६	१५
Baste	Caste	३६	१८
हैं	रहे	५१	४
ञाजत	इजाजत	५९	२१
मिलने वह	मिलने पर वह	६३	१५
में कभी	मैं उसे कभी	७०	३
आइफ	आइन	७७	१८
कहीं	नहीं	८५	१४
क्रोध के अंगूरा	क्रोध के अंगूर	९१	९
ब्रिटेन	ब्रिटेनिका	१०५	१९
राष्ट्रीय विभाग	राष्ट्रीय विभाज्य	१३०	९
पिरेमिटो	पिरेमिडों	१५३	१३
ल्यौनिग	प्लेनिंग	१६४	५
कुछ भी	उद्यमी	१७४	११
सम्पन्न	सम्भव	१७५	६
पाश्चात्य	पौर्वात्य	१७७	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०	लाइन
दनाना	दताना	१७७	१६
वैवित्पनतान	वैचित्पन	१७६	२३
कोल्हुक	कोल्हूक	१८२	१२
नाटक	नानक	१८७	२२
नाल्नाघटी	नाल्नाघाटी	१६८	१
कच	उन्न	१६८	१३
ज्ञाटलल	ज्ञाटल	२०७	८
अन्तस्त के	अन्तस्तल से	२१४	४
उपयोगी	उयोगी	२२१	१३
वानक	नानक	२२१	१
केन्द्रीकरण	विकेन्द्रीकरण	२२२	
Disl	Desl	२२२	